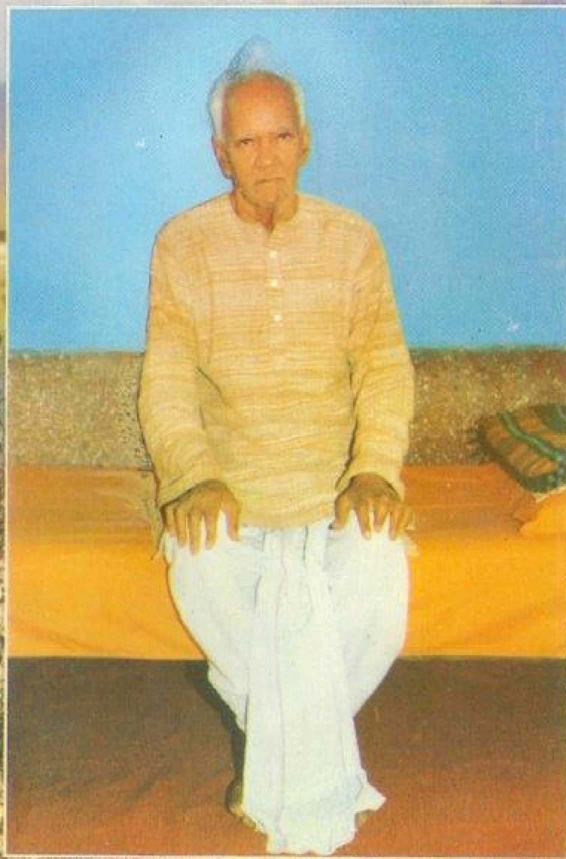
गहना कर्मणोगति



-श्रीराम शर्मा आचार्य

गहना कर्मणोगतिः
(कर्मफल का सुनिश्चित सिद्धांत)



लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं० २५३०२००



पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : ७.०० रुपये

भूमिका

निःसंदेह कर्म की गति बड़ी गहन है। धर्मात्माओं को दुःख पापियों को सुख, आलसियों को सफलता, उद्योगशीलों को असफलता, विवेकवानों पर विपत्ति, मूर्खों के यहाँ संपत्ति, दंभियों को प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठों को तिरस्कार प्राप्त होने के अनेक उदाहरण इस दुनिया में देखे जाते हैं। कोई जन्म से ही वैभव लेकर पैदा होते हैं, किन्हीं को जीवन भर दुःख ही दुःख भोगने पड़ते हैं। सुख और सफलता के जो नियम निर्धारित हैं, वे सर्वांश पूरे नहीं उतरते।

इन सब बातों को देखकर भाग्य, ईश्वर की मरजी, कर्म की गति के संबंध में नाना प्रकार के प्रश्न और संदेहों की झड़ी लग जाती है। इन संदेहों और प्रश्नों का जो समाधान प्राचीन पुस्तकों में मिलता है, उससे आज के तर्कशील युग में ठीक प्रकार समाधान नहीं होता। फलस्वरूप नई पीढ़ी, उन पाश्चात्य सिद्धांतों की ओर झुकती जाती है, जिनके द्वारा ईश्वर और धर्म को ढोंग और मनुष्य को पंचतत्त्व निर्मित बताया जाता है एवं आत्मा के अस्तित्व से इंकार किया जाता है। कर्मफल देने की शक्ति राज्यशक्ति के अतिरिक्त और किसी में नहीं है। ईश्वर और भाग्य कोई वस्तु नहीं है आदि नास्तिक विचार हमारी नई पीढ़ी में घर करते जा रहे हैं।

इस पुस्तक में वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण से कर्म की गहन गति पर विचार किया गया है और बताया गया है कि जो कुछ भी फल प्राप्त होता है, वह अपने कर्म के कारण ही है। हमारा विचार है कि पुस्तक कर्मफल संबंधी जिज्ञासाओं का किसी हद तक समाधान अवश्य करेगी।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

गहना कर्मणोगतिः

चित्रगुप्त का परिचय

नयन्ति नरकं नूनं मात्मानो मानवान् हतः।
दिवं लोकं च ते तुष्टा इत्यूचुर्मन्त्र वेदिनः॥

पंचाध्यायी

(नूनं) निश्चय से (हताः) हनन की हुई (आत्मानः) आत्माएँ (मानवान्) मनुष्यों को (नरकं) नरकको (नयन्ति) ले जाती हैं (च) और (तुष्टा) संतुष्ट हुई (ते) वे आत्माएँ (दिव्य लोकं) दिव्य लोक को ले जाती हैं (इति) ऐसा (मंत्र, वेदिनः) रहस्य को समझाने वालों ने (प्रोचुः) कहा है।

उपरोक्त श्लोक में कहा गया है कि हनन की हुई आत्मा नरक को ले जाती है और संतुष्ट की हुई आत्मा दिव्य लोक प्रदान करती है। श्लोक में इस गुत्थी को सुलझा दिया गया है कि स्वयं-नरक किस प्रकार मिलता है? गरुण पुराण में इस संबंध में एक अलंकारिक विवरण दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि यमलोक में 'चित्रगुप्त' नामक देवता हर एक जीव के भले-बुरे कर्मों का विवरण प्रत्येक समय लिखते रहते हैं। जब प्राणी मर कर यमलोक में जाता है, तो वह लेखा पेश किया जाता है। और उसी के आधार पर शुभ कर्मों के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मों के लिए नरक प्रदान किया जाता है। साधारण दृष्टि से चित्रगुप्त का अस्तित्व काल्पनिक प्रतीत होता है, क्योंकि पृथ्वी पर अरबों तो मनुष्य ही रहते हैं, फिर ऐसा ही तथाकथित चौरासी लाख योनियों, जिनमें से अनेक तो मनुष्य जाति से अनेक गुनी अधिक हैं, इन सबकी संख्या गिनी जाए, तो इतनी अधिक हो जाएगी कि हमारे अंकगणित की वहाँ तक पहुँच भी न होगी। फिर इतने असंख्य प्राणियों द्वारा पल-पल पर किए जाने वाले कार्यों का लेखा दिन-रात बिना विश्राम के कल्प-कल्पांतों तक लिखते रहना एक देवता के लिए कठिन है। इस प्रकार चित्रगुप्त का कार्य असंभव प्रतीत होता है, इस कथानक को एक कल्पना मान लेने पर चित्रगुप्त का अस्तित्व भी संदिग्ध हो जाता है।

आधुनिक शोधों ने उपरोक्त अलंकारिक कथानक में से बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सचाई को खोज निकाला है, डॉक्टर फ्राइड ने मनुष्यों की मानसिक रचना का वर्णन करते हुए बताया है कि जो भी भले या बुरे काम ज्ञानवान प्राणियों द्वारा किए जाते हैं, उनका सूक्ष्म चित्रण अंत:चेतना में रहता है। ग्रामोफोन के रिकार्डों में रेखा रूप में गाने भर दिए जाते हैं। संगीतशाला में नाच, गाना हो रहा है और साथ ही अनेक बाजे बज रहे हैं, इन अनेक प्रकार की ध्वनियों का विद्युत शक्ति से एक प्रकार का संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एकीकरण होता है और वह रिकार्ड में जरा-सी जगह में रेखाओं की तरह अंकित होता जाता है। तैयार किया हुआ रिकार्ड रखा रहता है, वह तुरंत ही अपने आप या चाहे जब नहीं बजने लगता वरन तभी उन संग्रहीत ध्वनियों को प्रकट करता है, जब ग्रामोफोन की मशीन पर उसे घुमाया जाता है और सुई की रगड़ उन रेखाओं से होती है। ठीक इसी प्रकार भले और बुरे जो भी काम किए जाते हैं, उनकी सूक्ष्म रेखाएँ अंत:चेतना के ऊपर अंकित होती रहती हैं और मन के भीतरी कोने में धीरे-धीरे जमा होती जाती हैं। जब रिकार्ड पर सुई का आघात लगता है, तो उसमें भरे हुए गाने प्रकट होते हैं, इसी प्रकार गुप्त मन में जमा हुई रेखाएं किसी उपयुक्त अवसर का आघात लगने पर ही प्रकट होती हैं। भारतीय विद्वान 'कर्म रेखा' के बारे में बहुत प्राचीनकाल से जानकारी रखते आ रहे हैं। 'कर्म रेख नहिं मिटे, करे कोई लाखन चतुराई' आदि अनेक युक्तियाँ हिंदी और संस्कृत साहित्य में मौजूद हैं जिनसे प्रकट होता है कि कर्मों की कई रेखाएँ होती हैं, जो अपना फल दिए बिना मिटती नहीं। भाग्य के बारे में मोटे तौर से ऐसा समझा जाता है कि सिर की अगली मस्तक वाली हड्डी पर कुछ रेखाएँ ब्रह्मा लिख देता है और विधि के लेख को मेंटनहारा अर्थात उन्हें मिटाने वाला कोई नहीं है। डॉक्टर वीबेन्स ने मस्तिष्क में भरे हुए ग्रे मैटर (भूरा चर्बी जैसा पदार्थ) का सूक्ष्म दर्शक यंत्रों की सहायता से खोज करने पर वहाँ के एक-एक परमाणु में अगणित रेखाएँ पाई हैं, यह रेखाएँ किस प्रकार बनती हैं, इसका कोई शारीरिक प्रत्यक्ष कारण उन्हें नहीं मिला, तब उन्होंने अनेक मस्तिष्कों के परमाणुओं का परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि अक्रिय, आलसी

एवं विचार शून्य प्राणियों में यह रेखाएँ बहुत ही कम बनती हैं, किंतु कर्मनिष्ठ एवं विचारवानों में इनकी संख्या बहुत बड़ी होती है। अतएव यह रेखाएँ शारीरिक और मानसिक कार्यों को संक्षिप्त और सूक्ष्म रूप में लिपिबद्ध करने वाली प्रमाणित हुईं।

भले-बुरे कर्मों का ग्रे मैटर के परमाणुओं पर यह रेखांकन जिसे प्रकट शब्दों में अंत:चेतना का संस्कार कहा जा सकता है, पौराणिक चित्रगुप्त की वास्तविकता को सिद्ध कर देता है। चित्रगुप्त शब्द के अर्थों से भी इसी प्रकार की ध्वनि निकलती है। गुप्त चित्र, गुप्त मन, अंत:चेतना, सूक्ष्म मन, पिछला दिमाग, भीतर चित्र इन शब्दों के भावार्थ को ही चित्रगुप्त शब्द प्रकट करता हुआ दीखता है। 'चित्र' शब्द को जल्दी में लिख देने से 'चित्र' जैसा ही बन जाता है। संभव है कि चित्त का बिगाड़ कर चित्र बन गया हो या प्राचीनकाल में चित्त और चित्र एक ही अर्थ के बोधक रहे हों। कर्मों की रेखाएँ एक प्रकार के गुप्त चित्र ही हैं, इसलिए उन छोटे अंकनों में गुप्त रूप से, सूक्ष्म रूप से, बड़े-बड़े घटना चित्र छिपे हुए होते हैं, इस क्रिया प्रणाली को चित्र गुप्त मान लेने से प्राचीन शोध का समन्वय हो जाता है।

यह चित्रगुप्त नि:संदेह हर प्राणी के हर एक कार्य को, हर समय बिना विश्राम किए अपनी बही में लिखता रहता है। सबका अलग-अलग चित्र गुप्त है। जितने प्राणी हैं, उतने ही चित्र गुप्त हैं, इसलिए यह संदेह नहीं रह जाता है कि इतना लेखन कार्य किस प्रकार पूरा हो पाता होगा। स्थूल शरीर के कार्यों की सुव्यवस्थित जानकारी सूक्ष्म चेतना में अंकित होती रहे, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। 'पौराणिक चित्र गुप्त एक है और यहाँ अनेक हुए' यह शंका भी कुछ गहरी नहीं है। घटाकाश, मठाकाश का ऐसा ही भेद है। इंद्र, वरुण, अग्नि, शिव, यम आदि देवता बोधक सूक्ष्मतत्त्व व्यापक समझे जाते हैं। जैसे बगीचे की वायु गंदे नाले की वायु आदि स्थान भेद से अनेक नाम वाली होते हुए भी मूलत: विश्व व्यापक वायु तत्त्व एक ही है, वैसे ही अलग-अलग शरीरों में रहकर अलग-अलग काम करने वाला चित्र गुप्त देवता भी एक ही तत्त्व है।

यह हर व्यक्ति के कर्मों का लेखा किस आधार पर, कैसा, किस प्रकार, कितना, क्यों लिखता है ? यह अगली पंक्तियों में बताया जाएगा एवं चित्र गुप्त द्वारा लिखी हुई कर्मरेखाओं के आधार पर स्वर्ग-नरक का विवरण और उनके प्राप्त होने की व्यवस्था पर प्रकाश डाला जाएगा।

पिछली पंक्तियां में पाठक पढ़ चुके हैं कि हमारा गुप्त चित्र अंतर्मन ही निरंतर चित्रगुप्त देवता का काम करता रहता है। जो कुछ भले या बुरे काम हम करते हैं, उनका सूक्ष्म चित्र उतार-उतार कर अपने भीतर जमा करता रहता है। सिनेमा के परदे पर मनुष्य की बराबर लंबी-चौड़ी तस्वीर दिखाई देती है, पर उसका फिल्म केवल एक इंच ही चौड़ा होता है। इसी प्रकार पाप-पुण्य का घटनाक्रम तो विस्तृत होता है, पर उसका सूक्ष्म चित्र एक पतली रेखा मात्र के भीतर खिंच जाता है और वह रेखा गुप्त मन के किसी परमाणु पर अदृश्य रूप से जमकर बैठ जाती है। शार्टहैंड लिखने वाले बड़ी बात को थोड़ी सी उलटी-सीधी लकीरों के इशारे पर जरा से कागज पर लिख देते हैं। कर्मरेखा को ऐसी ही दैवी शार्टहैंड समझा जा सकता है।

पाठकों को इतनी जानकारी तो बहुत पहले हो चुकी होगी कि मन के दो भाग हैं—एक बहिर्मन, दूसरा अंतर्मन। बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, सोचता है, काट-छाँट करता है, निर्णय करता है और अपने इरादों को बदलता रहता है, पर अंतमन भोले-भाले किंतु दृढ़ निश्चयी बालक के समान है. वह काट-छाँट नहीं करता वरन श्रद्धा और विश्वास के आधार पर काम करता है। बाहरी मन तो यह सोच सकता है कि पाप कर्मों की रेखाएँ अपने ऊपर अंकित न होने दूँ और पुण्य कर्मों को बढ़ा-चढ़ा कर अंकित करूँ, जिससे पापफल न भोगना पड़े और पुण्य फल का भरपूर आनंद प्राप्त हो, परंतु भीतरी मन ऐसा नहीं है। यह सत्यनिष्ठ जज की तरह फैसला करता है, कोई लोभ, लालच, भय स्वार्थ उसे प्रभावित नहीं करता। कहा जाता है कि मनुष्य के अंदर एक ईश्वरीय शक्ति रहती है, दूसरी शैतानी। आप गुप्त मन को ईश्वरीय शक्ति और तर्क, मन, छल, कपट, स्वार्थ, लोभ में रत रहने वाले बाह्य मन को शैतानी शक्ति कह

सकते हैं। बाहरी मन धोखेबाजी कर सकता है, परंतु भीतरी मन तो सत्य रूपी आत्मा का तेज है, वह न तो मायावी आचरण करता है, न छल-कपट। निष्पक्ष रहना उसका स्वभाव है। इसलिए ईश्वर ने उसे इतना महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा है। दुनिया उसे चित्रगुप्त देवता कहती है। यदि वह भी पक्षपात करता, तो भला इतनी ऊँची जज की पदवी कैसे पा सकता था और जो-जो भले-बुरे काम किए जाते हैं, उनका ऐमालनामा अपनी खुफिया डायरी में दर्ज करता रहता है।

बाहरी दुनिया में मुलजिम को सजा दिलाने का काम दो महकमों के आधीन है, एक पुलिस, दूसरा अदालत। पुलिस तो मुलजिम को पकड़ ले जाती है और उसके कामों का सबूत एकत्रित करके अदालत के सामने पेश करती है। फिर अदालत का महकमा अपना काम करता है। जज महाशय अपराध और अपराधी की स्थिति के बारे में बहुत दृष्टियों से विचार करते हैं, तब जैसा उचित होता है वैसा फैसला करते हैं। एक ही जुर्म में आए हुए अपराधियों को अलग-अलग तरह की सजा देते हैं। तीन खूनी पकड़ कर लाए गए, इनमें से एक को बिलकुल बरी कर दिया, दूसरे को पाँच साल की सजा मिली, तीसरे को फाँसी। हत्या तीनों ने की थी, पर सजा देते वक्त मजिस्ट्रेटों ने बहुत बातों पर विचार किया। जिसे बरी कर दिया गया था वह मकान बनाने वाला मजदूर था, छत पर काम करते वक्त पत्थर का टुकड़ा उसके हाथ से अचानक छूट गया और वह नीचे सड़क पर चलते एक मुसाफिर के सिर में लगा, सिर फट गया, मुसाफिर की मृत्यु हो गई। जज ने देखा कि हत्या तो अवश्य हुई, मजदूर निर्दोष है, उसने जान-बूझकर बुरे इरादे से पत्थर नहीं फेंका था, इसलिए उसे बरी कर दिया गया। दूसरा मुलजिम एक किसान था। खेत काटते हुए चोर को ऐसी लाठी मारी कि वह मर गया। मजिस्ट्रेट ने सोचा-चोरी होते देखकर गुस्सा आना स्वाभाविक है, पर किसान की इतनी गलती है कि मामूली अपराध पर इतना नहीं मारना चाहिए था, इसलिए उसे पाँच साल की सजा मिली। तीसरा मुलजिम एक मशहूर डाकू था। एक धनी पुरुष के घर में रात को घुस गया और उसका कत्ल करके धन-माल चुरा लाया। इसका अपराध जघन्य था इसलिए फाँसी की सजा दी गई। तीनों ही

अपराधियों ने खून किया था, जुर्म का बाहरी रूप एक-सा था, पर मजिस्ट्रेट सूक्ष्मदर्शी होता है, वह बाहरी बातों को देखकर ही सजा नहीं दे डालता वरन भीतरी बारीकियों पर भली प्रकार विचार करके तब कुछ फैसला करता है।

भीतरी दुनिया में गुप्त-चित्र या चित्रगुप्त पुलिस और अदालत दोनों महकमों का काम स्वयं ही करता है। यदि पुलिस झूठा सबूत दे दे तो अदालत का फैसला भी अनुचित हो सकता है, परंतु भीतरी दुनिया में ऐसी गड़बड़ी की संभावना नहीं। अंतःकरण सब कुछ जानता है कि यह कर्म किस विचार से, किस इच्छा से, किस परिस्थिति में, क्यों कर किया गया था। वहाँ बाहरी मन को सफाई या बयान देने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि गुप्त मन उस बात के संबंध में स्वयं ही पूरी-पूरी जानकारी रखता है। हम जिस इच्छा से, जिस भावना से जो काम करते हैं, उस इच्छा या भावना से ही पाप-पुण्य का नाप होता है। भौतिक वस्तुओं की तोल-नाप बाहरी दुनिया में होती है। एक गरीब आदमी दो पैसा दान करता है और एक धनी आदमी दस हजार रुपया दान करता है, बाहरी दुनिया तो पुण्य की तौल रुपए-पैसों की गिनती के अनुसार करेगी। दो पैसा दान करने वाले की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखेगा, पर दस हजार रुपया देने वाले की प्रशंसा चारों ओर फैल जाएगी। भीतरी दुनिया में यह तोल-नाप नहीं चलती। अनाज के दाने अँगोछे में बाँधकर गाँव के बनिए की दुकान पर चले जाएँ, तो यह बदले में गुड़ देगा, पर उसी अनाज को इंग्लैंड की राजधानी लंदन में जाकर किसी दुकानदार को दिया जाए, तो वह कहेगा-महाशय! इस शहर में अनाज के बदले सौदा नहीं मिलता, यहाँ तो पौंड, शिलिंग, पेंस का सिक्का चलता है। ठीक इसी तरह बाहरी दुनिया में रुपयों की गिनती से, काम के बाहरी फैलाव से, कथा-वार्ता से, तीर्थयात्रा आदि भौतिक चीजों से यश खरीदा जाता है, पर चित्रगुप्त देवता के देश में यह सिक्का नहीं चलता, वहाँ तो इच्छा और भावना की नाप-तौल है। उसी के मुताबिक पाप-पुण्य का जमा-खरच किया जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उकसा कर लाखों आदमियों को महाभारत के युद्ध में मरवा डाला। लाशों से भूमि पट गई, खून की नदियाँ बह गईं,

फिर भी अर्जुन को कुछ पाप न लगा, क्योंकि हाड़-मांस से बने हुए कितने खिलौने टूट-फूट गए, इसका लेखा चित्रगुप्त के दरबार में नहीं रखा गया। भला कोई राजा यह हिसाब रखता है कि मेरे भंडार में से कितने चावल फैल गए। पाँच तत्त्व से बनी हुई नाशवान चीजों की कोई पूछ आत्मा के दरबार में नहीं है। अर्जुन का उद्देश्य पवित्र था, वह पाप को नष्ट करके धर्म की स्थापना करना चाहता था। बस वही इच्छा खुफिया रजिस्टर में दर्ज हो गई, आदमियों के मारे जाने की संख्या का कोई हिसाब नहीं लिखा गया। दुनिया में करोड़पति की बड़ी प्रतिष्ठा है, पर यदि उसका दिल छोटा है, तो चित्रगुप्त के दरबार में भिखमंगा शुमार किया जाएगा। **दुनिया का भिखमंगा यदि दिल का धनी है, तो उसे हजार बादशाहों का बादशाह गिना जाएगा।** इस प्रकार मनुष्य जो भी काम कर रहा है, वह किस नीयत से कर रहा है, वह नीयत, भलाई या बुराई जिस दरजे में जाती होगी, उसी में दरज कर दी जाएगी। सद्भाव से फाँसी लगाने वाला एक जल्लाद भी पुण्यात्मा गिना जा सकता है और एक धर्मध्वजी तिलकधारी पंडित भी गुप्त रूप से दुराचार करने पर पापी माना जा सकता है। बाहरी आडंबर का कुछ मूल्य नहीं है, कीमत भीतरी चीज की है। बाहर से कोई काम भला या बुरा दिखाई दे, तो उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। असली तत्त्व तो उस इच्छा और भावना में है, जिससे प्रेरित होकर वह काम किया गया है। पाप-पुण्य की जड़ कार्य और प्रदर्शन में नहीं, वरन निश्चित रूप से इच्छा और भावना में ही है।

उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि हमारे प्राणों के साथ घुलमिल कर रहने वाला चित्रगुप्त देवता, बिना किसी पक्षपात के बुरे-भले कर्मों का लेखा अंतःचेतना के परमाणुओं पर लिखा करता है, उस अदृश्य लिपि को बोलचाल की भाषा में कर्मरेखा कहते हैं। साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि पाप-पुण्य का निर्णय काम के बाहरी रूप से नहीं वरन कर्त्ता की इच्छा और भावना के अनुरूप होता है। यह इच्छा जितनी तीव्र होगी, उतना ही पाप-पुण्य भी अधिक एवं बलवान होगा। जैसे एक व्यक्ति उदास मन से किसी रोगी की सेवा करता है और दूसरा व्यक्ति दूसरे रोगी की सेवा अत्यंत दया, सहानुभूति, उदारता एवं प्रेमपूर्वक करता है, तो

बाहर से देखने में दोनों के काम समान भले ही हों, पर उस पुण्य का परिणाम भावना की उदासीनता एवं प्रेम की तत्परता के अनुसार न्यूनाधिक होगा। इसी प्रकार एक भूखा व्यक्ति लाचार होकर चोरी करता है, दूसरा व्यक्ति मद्यपान के लिए चोरी करता है, तो दोनों के पाप में निस्संदेह न्यूनाधिकता होगी। चोरी दोनों ने की है, पर दुष्टता में न्यूनाधिकता के कारण पाप भी उसी अनुपात से होगा।

इस संबंध में एक और भी महत्त्वपूर्ण बात जान लेने की है कि हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग कानून व्यवस्था है। रिश्वत के मामले में एक चपरासी, एक क्लर्क, एक मजिस्ट्रेट तीन आदमी पकड़े जाएँ, तो तीनों को अलग-अलग तरह की सजा मिलेगी। संभव है चपरासी को डाट-डपट सुना कर ही छुटकारा मिल जाए, पर मजिस्ट्रेट बर्खास्त हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी बड़ी जिम्मेदारी है। एक असभ्य भील शिकार मारकर पेट पालता है, अपराध उसका भी है, परंतु अहिंसा का उपदेश करने वाला पंडित यदि चुपचाप बूचर की दुकान में जाता है, तो पंडित को उस भील की अपेक्षा अनेक गुना पाप लगेगा। कारण यह है कि ज्ञान वृद्धि करता हुआ जीव जैसे-जैसे आगे बढ़ता चलता है, वैसे ही वैसे उसकी अंत:चेतना अधिक स्वच्छ हो जाती है। मैले कपडे पर थोड़ी-सी धूल पड़ जाए, तो उसका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, परंतु दूध से समान स्वच्छ धुले हुए कपड़े पर जरा सा धब्बा लग जाए, तो वह दूर से ही चमकता है और बहुत बुरा मालूम पडता है। छोटा बच्चा कपड़ों पर टट्टी फिर देता है, पर उसे कोई बुरा नहीं कहता और न बच्चे को कुछ शरम आती है, किंतु यदि कोई जवान आदमी ऐसा कर डाले तो उसे बुरा कहा जाएगा और वह खुद भी लज्जित होगा। बच्चे ने और बड़े ने आचरण एक-सा ही किया, पर उसके मानसिक विकास में अंतर होने के कारण बुराई की गिनती कम-ज्यादा की गई। इसी प्रकार अशिक्षित, अज्ञानी, असभ्य को कम पाप लगता है। ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ भला-बुरा समझने की योग्यता बढ़ती जाती है, सत-असत का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक प्रबल होता जाता है, अंत:करण की पुकार जोरदार बनती है, इस प्रकार आत्मोन्नति के साथ-साथ सदाचरण की

जिम्मेदारी भी बढ़ती जाती है। हुकुम-उदूली करने पर मामूली चपरासी को सौ रुपया जुर्माना हो जाता है, परंतु फौजी अफसर हुक्म-अदूली करे, तो कोर्ट मार्शल द्वारा गोली से शूट करा दिया जाएगा। ज्ञानवान, विचारवान, और भावनाशील हृदय वाले व्यक्ति जब दुष्कर्म करते हैं, तो उनका चित्रगुप्त उस करतूत को बहुत भारी पाप की श्रेणी में दर्ज कर देता है। गौदान से लोग वैतरणी पार कर जाते हैं, पर राजा नृप जैसा विवेकवान थोड़ी गलती करने पर ही नरक में जा पहुँचा। अज्ञानी व्यक्ति अपराध करे तो यह उतना महत्त्व नहीं रखता, किंतु कर्त्तव्यच्युत ब्राह्मण तो घोर दंड का भागी बनता है। राजा बनना सब दृष्टियों में अच्छा है, पर राजा की जिम्मेदारी भी सबसे ऊँची है। ज्ञानवानों का यह कठोर उत्तरदायित्व है कि सदाचार पर दृढ़ रहें, अन्यथा सात मंजिल ऊँची छत पर से गिरने वाले को जो कष्ट होता है, उन्हें भी वही दु:ख होगा। कर्मों का फल किस प्रकार मिलता है ? पाठकों को यह रहस्य भी आगे के लेखों में समझाया जाएगा।

आकस्मिक सुख-दु:ख

दैविकं दैहिकं चापि भौतिकं च तथैव हि।
आयाति स्वयमाहूतो दु:खानामेष संचय: ॥

—पंचाध्यायी

(दैविकं) दैविक (अपि च) और (दैहिकं) दैहिक (तथैव च) उसी प्रकार (च) और (भौतिकं) भौतिक (दुखानां) दु:खों का (एष) यह (संचय:) समूह (स्वयमाहूत:) अपने आप बुलाया हुआ (आयाति) आता है।

अनेक बार ऐसे अवसर आ उपस्थित होते हैं जो प्राकृतिक नियमों के बिलकुल विपरीत दिखाई देते हैं। एक मनुष्य उत्तम जीवन बिताता है, पर अकस्मात उसके ऊपर ऐसी विपत्ति आ जाती है मानो ईश्वर किसी घोर दुष्कर्म का दंड दे रहा हो। एक मनुष्य बुरे से बुरे कर्म करता है, पर वह चैन की वशी बजाता है, सब प्रकार से सुख-सौभाग्य उसे प्राप्त होते हैं। एक निठल्ले को लॉटरी में, जुआ में या कहीं गढ़ा हुआ धन मिल जाता है, किंतु दूसरा अत्यंत परिश्रमी और बुद्धिमान मनुष्य अभाव में ही ग्रसित रहता है। एक व्यक्ति स्वल्प परिश्रम में ही बड़ी सफलता प्राप्त कर लेता

है, दूसरा घोर प्रयत्न करने और अत्यंत सही तरीका पकड़ने पर भी असफल रहता है। ऐसे अवसरों पर 'प्रारब्ध', 'भाग्य' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार महामारी, बीमारी, अकाल मृत्यु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बिजली गिरना, भूकंप, बाढ़ आदि दैवी प्रकोप भी भाग्य, प्रारब्ध कहे जाते हैं। आकस्मिक दुर्घटनाएँ, मानसिक आपदा, वियोग आदि वे प्रसंग जो टल नहीं सकते, इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

यह ठीक है कि ऐसे प्रसंग कम आते हैं, प्रयत्न से उलटा फल होने की आकस्मिक घटना घटित हो जाने के अपवाद चाहे कितने ही कम क्यों न हों, पर होते जरूर हैं और वे कभी-कभी ऐसे कठोर होते हैं कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। ऐसे अवसरों पर हम में से साधारण श्रेणी का ज्ञान रखने वाले बहुत ही भ्रमित हो जाते हैं और ऐसी-ऐसी धारणा बना लेते हैं, जो जीवन के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होती हैं। कुछ लोग तो ईश्वर पर अत्यंत कुपित होते हैं, उसे दोषी ठहराते हैं और भरपूर गालियाँ देते हैं, कई तो नास्तिक हो जाते हैं, कहते हैं कि हमने ईश्वर का इतना भजन-पूजन किया पर उसने हमारी कुछ भी सहायता नहीं की, ऐसे ईश्वर को पूजना व्यर्थ है, कई महामानव लाभ की इच्छा से साधु-संत, देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। यदि संयोगवश इसी बीच में कुछ हानिकर प्रसंग आ गए, तो उस पूजा के स्थान पर निंदा करने लगते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि ऐसे आकस्मिक प्रसंग आने के समय ही यदि घर में कोई नया प्राणी आया हो, कोई पशु खरीदा हो, बालक उत्पन्न हुआ हो, नई बहू आई हो, तो उस घटना का दोष या श्रेय उस नवागंतुक प्राणी पर थोप दिया जाता है। यह नया बालक बड़ा भाग्यवान हुआ जो जन्मते ही इतना लाभ हुआ, यह बहू बड़ी अभागी आई कि आते ही सत्यानाश कर दिया, इस श्रेयदान या दोषारोपण के कारण कभी-कभी घर में ऐसे दुःखदाई क्लेश-कलह उठ खड़े होते हैं कि उनका स्मरण होते ही रोमांच हो जाता है। हमारे परिचित एक सज्जन के घर में नई बहू आई, उन्हीं दिनों घर का एक जवान लड़का मर गया। इस मृत्यु का दोष बेचारी नई बहू पर पड़ा, सारा घर यही तानाकसी करता—'यह बड़ी अभागी आई है, आते ही एक बलि ले ली।' कुछ दिन तो इस अपमान को बेचारी

निर्दोष लड़की विष के घूँट की तरह पीती रही, पर जब हर वक्त का अपमान, घर वालों का नित्यप्रति का दुर्व्यवहार सहन न कर सकी, तो मिट्टी का तेल छिड़क कर जल मरी। बेचारी निरपराध विधवाओं को अभागी, कलमुँही, डायन की उपाधि मिलने का एक आम रिवाज है। इसका कारण भाग्यवाद के संबंध में मन में जमी हुई अनर्थमूलक धारणा है। सही बात को न समझने के कारण लोगों के हृदयों में ऐसे ऊटपटांग विश्वास घर जमा लेते हैं। अनेक व्यक्ति तो भाग्य की वेदी पर कर्त्तव्य की बलि चढ़ा देते हैं। उनका विश्वास होता है कि इस जीवन में भी हानि-लाभ होगा, वह भाग्य के अनुसार होगा। अब जो कर्म किए जा रहे हैं, उनका फल अगले जन्म में भले मिले, पर यह जीवन तो प्रारब्ध के रस्सों में ही जकड़ा हुआ है। जब उपाय करने, प्रयत्न या उद्योग करने की बात चलती है, तो वे यही कहते हैं कि जो भाग्य में लिखा होगा सो होगा, ब्रह्मा की लकीर को कौन मेंट सकता है, जो ईश्वर को करनी होगी वह होकर रहेगी, होनी बड़ी प्रबल है, इन शब्दों का प्रयोग वास्तव में इसलिए है कि जब आकस्मिक दुर्घटना पर अपना वश नहीं चलता और अनहोने प्रसंग सामने आ खड़े होते हैं, तो मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा विक्षुब्ध, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। सामने कोई दोषी तो दिखाई नहीं पड़ता पर आघात लगने के कारण रोष आता ही है। आवेश में बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, संभव है कि वह दोष किसी निर्दोष पर बरस पड़े और अनर्थ उपस्थित कर दे, इसलिए उस क्षोभ को शांत करके किसी प्रकार संतोष धारण किया जाता है, परंतु हम देखते हैं कि आज अनेक व्यक्ति उस आपत्तिकाल के मन समझाव को कर्त्तव्य के ऊपर कुल्हाड़ी की तरह चलाते हैं। होते-होते यह लोग उद्योग के विरोधी हो जाते हैं और अजगर और पक्षी की उपमा देकर भाग्य के ऊपर निर्भर रहते हैं, यदि यह सज्जन बड़े-बूढ़े हुए तो अपने प्रभाव से निकटवर्ती अल्पज्ञान वाले तरुणों और किशोरों को भी इसी भाग्यवाद की निराशा के दलदल में डाल देते हैं।

पाठक समझ गए होंगे कि आकस्मिक घटनाओं के वास्तविक कारण की जानकारी न होने से कैसी-कैसी अनर्थकारी ऊटपटांग धारणाएँ उपजती हैं और वे लोगों के मनों में जब गहरी घुस बैठती हैं, तो जीवन

प्रवाह को उलटा विकृत एवं बेहूदा बना देती हैं। मनुष्य जाति 'कर्म की गहन गति' को चिरकाल से जानती है और उसके उन कारणों को जानने के लिए चिरकाल से प्रयत्न करती रहती है। उसके कई हल भी अब तक तत्त्वदर्शियों ने खोज निकाले हैं। पंचाध्यायीकार ने उपरोक्त श्लोक में **'गहना कर्मणोगतिः'** पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि यह दैविक, दैहिक और भौतिक घटनाएँ, तीन प्रकार के आकस्मिक सुख-दुःख, संचित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के आधार पर होते हैं। दूध एक नियत समय में एक विशेष प्रक्रिया द्वारा दही या घी बन जाता है। इसी प्रकार त्रिविध कर्म भी तीन प्रकार के फलों को उत्पन्न करते हैं। वे आकस्मिक घटनाएँ किस तरह उत्पन्न करते हैं, इसका पूरा, विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन आगे करेंगे।

तीन दुःख और उनका कारण

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि आकस्मिक सुख-दुःख हर व्यक्ति के जीवन में आया करते हैं। इनसे सुर-मुनि, देव-दानव कोई नहीं बचता। भगवान राम तक इस कर्म-गति से छूट न सके। सूरदास ने ठीक कहा है—

कर्मगति टारे नाहि टरे।
गुरु वसिष्ठ पंडित बड़ ज्ञानी, रचि पचि लगन धरै।
पिता मरण और हरण सिया को, वन में विपत्ति परै॥

वसिष्ठ जैसे गुरु के होते हुए भी राम कर्म गति को टाल न सके। उन्हें भी पिता का मरण, सिया का हरण एवं वन की विपत्तियाँ सहन करनी पड़ीं। यह विपत्तियाँ कहीं से अकस्मात टूट पड़ती हैं या ईश्वर नाराज होकर दुःख-दंड देता है, ऐसा समझना ठीक न होगा। 'पंचाध्यायी' का निश्चित मत है कि सब प्रकार के दुःख अपने ही बुलाने से आते हैं। रामायण का मत भी इस संबंध में यही है—

काहु न कोउ दुःख सुखकर दाता।
निज - निज कर्म भोग सब भ्राता॥

दूसरा कोई भी प्राणी या पदार्थ किसी को दुःख देने की शक्ति नहीं रखता। सब लोग अपने ही कर्मों का फल भोगते हैं और उसी भोग से

रोते-चिल्लाते रहते हैं, जीव की पीछे से ऐसी कठोर व्यवस्था बँधी हुई है, जो कर्मों का फल तैयार करती रहती है। मछली पानी में तैरती है, उसकी पूँछ पानी को काटती हुई पीछे-पीछे एक रेखा-सी बनाती चलती है। साँप रेंगता जाता है और रेत पर उसकी लकीर बनती जाती है, जो काम हम करते हैं, उनके संस्कार बनते जाते हैं। बुरे कर्मों के संस्कार स्वयं बोई हुई कँटीली झाड़ी की तरह अपने लिए ही दुःखदाई बन जाते हैं।

अब हम तीन प्रकार के कर्म, उनके तीन प्रकार के स्वभाव एवं तीन तरह के फल की चरचा आरंभ करते हैं। सुख तो मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति है। सुकर्म करना स्वभाव है, इसलिए सुख प्राप्त होना भी स्वाभाविक ही है। कष्ट दुःख में होता है। दुःख से ही लोग डरते-घबराते हैं, उसी से छुटकारा पाना चाहते हैं। इसलिए दुःखों का ही विवेचन यहाँ होना उचित है। आरोग्यवर्द्धक शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र दो अलग-अलग शास्त्र हैं। इसी प्रकार सुख-दुःख के भी दो अलग विज्ञान हैं। सुख-वृद्धि के लिए धर्माचरण करना चाहिए जैसे कि स्वास्थ्य वृद्धि के लिए पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया जाता है। दुःख निवृत्ति के लिए, रोगा का निवारण करने के लिए उसका निदान और चिकित्सा जानने की आवश्यकता है। कर्म की गहन गति की जानकारी प्राप्त करने से दुःखों का मर्म समझ में आता है। दुःखों के कारण को छोड़ देने से सहज ही दुःखों से निवृत्ति हो जाती है। आइए, अब हम दुःखों का स्वरूप आपके सामने रखने का प्रयत्न करें।

दुःख तीन प्रकार के होते हैं—(१) दैविक, (२) दैहिक, (३) भौतिक। दैविक दुःख वे कहे जाते हैं, जो मन को होते हैं, जैसे चिंता, आशंका, क्रोध, अपमान, शत्रुता, बिछोह, भय, शोक आदि। दैहिक दुःख होते हैं, जो शरीर को होते हैं जैसे रोग, चोट, आघात, विष आदि के प्रभाव से होने वाले कष्ट। भौतिक दुःख वे होते हैं, जो अचानक अदृश्य प्रकार से आते हैं, जैसे भूकंप, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, महामारी, युद्ध आदि। इन्हीं तीन प्रकार के दुःखों की वेदना से मनुष्यों को तड़पता हुआा देखा जाता है। यह तीनों दुःख हमारे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कर्मों के फल हैं। मानसिक पापों के परिणाम से दैविक दुःख आते हैं, शारीरिक पापों के

फलस्वरूप दैहिक और सामाजिक पापों के कारण भौतिक दुःख उत्पन्न होते हैं।

दैविक दुःख—मानसिक कष्ट, उत्पन्न होने का कारण वे मानसिक पाप हैं, जो स्वेच्छापूर्वक तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर किए जाते हैं, जैसे ईर्ष्या, कृतघ्नता, छल, दंभ, घमंड, क्रूरता, स्वार्थपरता आदि। इन कुविचारों के कारण जो वातावरण मस्तिष्क में घुटता रहता है, उससे अंतःचेतना पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जिस प्रकार धुएँ के कारण दीवार काली पड़ जाती है या तेल से भीगने पर कपड़ा गंदा हो जाता है। आत्मा स्वभावतः पवित्र है, वह अपने ऊपर इन पाप-मूलक कुविचारों, प्रभावों को जमा हुआ नहीं रहने देना चाहती, वह इस फिक्र में रहती है कि किस प्रकार इस गंदगी को साफ करूँ? पेट में हानिकारक वस्तुएँ जमा हो जाने पर पेट उसे कै या दस्त में निकाल बाहर करता है। इसी प्रकार तीव्र इच्छा से, जानबूझ कर किए गए पापों को निकाल बाहर करने के लिए आत्मा आतुर हो उठती है। हम उसे जरा सा भी जान नहीं पाते, किंतु आत्मा भीतर ही भीतर उसके भार को हटाने के लिएअत्यंत व्याकुल हो जाती है। बाहरी मन, स्थूल बुद्धि को उस अदृश्य प्रक्रिया का कुछ भी पता नहीं लगता, पर अंतर्मन चुपके ही चुपके ऐसे अवसर एकत्रित करने में लगा रहता है, जिससे वह भार हट जाए। अपमान, असफलता, विछोह, शोक, दुःख आदि यदि प्राप्त होते हों ऐसे अवसरों को मनुष्य कहीं से एक न एक दिन, किसी प्रकार खींच ही लाता है, ताकि उन दुर्भावनाओं का, पाप संस्कारों का इन अप्रिय परिस्थितियों में समाधान हो जाए।

शरीर द्वारा किए हुए चोरी, डकैती, व्यभिचार, अपहरण, हिंसा आदि में मन ही प्रमुख है। हत्या करने में हाथ का कोई स्वार्थ नहीं है वरन मन के आवेश की पूर्ति है, इसलिए इस प्रकार के कार्य, जिनके करते समय इंद्रियों को सुख न पहुँचता हो, मानसिक पाप कहलाते हैं। ऐसे पापों का फल मानसिक दुःख होता है। स्त्री-पुत्र आदि प्रियजनों की मृत्यु, धन-नाश, लोक निंदा, अपमान, पराजय, असफलता, दरिद्रता आदि मानसिक दुःख हैं, उनसे मनुष्य की मानसिक वेदना उमड़ पड़ती है, शोक संताप उत्पन्न होता है, दुःखी होकर रोता-चिल्लाता है, आँसू बहाता

है, सिर धुनता है। इससे वैराग्य के भाव उत्पन्न होते हैं और भविष्य में अधर्म न करने एवं धर्म में प्रवृत्त रहने की प्रवृत्ति बढ़ती है। देखा गया है कि मरघट में स्वजनों की चिता रचते हुए ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं कि जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। धन नाश होने पर मनुष्य भगवान को पुकारता है। पराजित और असफल व्यक्ति का घमंड चूर हो जाता है। नशा उतर जाने पर वह होश की बात करता है, मानसिक दुःखों का एकमात्र उद्देश्य मन में जमे हुए ईर्ष्या, कृतघ्नता, स्वार्थपरता, क्रूरता, निर्दयता, छल, दंभ, घमंड की सफाई करना होता है। दुःख इसलिए आते हैं कि आत्मा के ऊपर जमा हुआ प्रारब्ध कर्मों का पाप संस्कार निकल जाए। पीड़ा और वेदना की धारा उन पूर्व कृत्य, प्रारब्ध कर्मों के निकृष्ट संस्कारों को धोने के लिए प्रकट होती है।

दैविक-मानसिक कष्टों का कारण समझ लेने के उपरांत अब दैहिक-शारीरिक कष्टों का कारण समझना चाहिए। जन्मजात अपूर्णता एवं पैतृक रोगों का कारण पूर्व जन्म में उन अंगों का दुरुपयोग करना है। मरने के बद सूक्ष्म शरीर रह जाता है। नवीन शरीर की रचना इस सूक्ष्म शरीर द्वारा होती है। इस जन्म में जिस अंग का दुरुपयोग किया जा रहा है, वह अंग सूक्ष्म शरीर में अत्यंत निर्बल हो जाता है, जैसे कोई व्यक्ति अति मैथुन करता हो तो सूक्ष्म शरीर का वह अंग निर्बल होने लगेगा, फलस्वरूप संभव है कि वह अगले जन्म में नपुंसक हो जाए। यह नपुंसकता केवल कठोर दंड नहीं है वरन सुधार का एक उत्तम तरीका भी है। कुछ समय तक उस अंग को विश्राम मिलने से आगे के लिए वह सचेत और सक्षम हो जाएगा। शरीर के अन्य अंगों के शारीरिक लाभ के लिए पापपूर्ण, अमर्यादित, अपव्यय करने पर आगे के जन्म में वे अंग जन्म से ही निर्बल या नष्ट प्रायः होते हैं। शरीर और मन के सम्मिलित पापों के शोधन के लिए जन्मजात रोग मिलते हैं या बालक अंग-भंग उत्पन्न होते हैं। अंग भंग या निर्बल होने से उस अंग को अधिक काम नहीं करना पड़ता, इसलिए सूक्ष्म शरीर का वह अंग विश्राम पाकर अगले जन्म के लिए फिर तरोताजा हो जाता है, साथ ही मानसिक दुःख मिलने से मन का पाप-भार भी धुल जाता है।

मानसिक पाप भी जिस शारीरिक पाप के साथ घुला-मिला होता है, वह यदि राजदंड, समाज दंड या प्रायश्चित द्वारा इस जन्म से शोधित न हुआ, तो अगले जन्म के लिए जाता है, परंतु यदि पाप केवल शारीरिक है या उनमें मानसिक पाप का मिश्रण अल्प मात्रा में है, तो उसका शोधन शीघ्र ही शारीरिक प्रकृति द्वारा हो जाता है, जैसे नशा पिया-उन्माद आया। विष खाया-मृत्यु हुई। आहार-विहार में गड़बड़ी हुई, बीमार पड़े। इस तरह शरीर अपने साधारण दोषों की सफाई जल्दी-जल्दी कर लेता है और इस जन्म का भुगतान इस जन्म में कर जाता है, परंतु गंभीर शारीरिक दुर्गुण, जिसमें मानसिक जुड़ाव भी होता है, अगले जन्म में फल प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म शरीर के साथ जाते हैं।

भौतिक कष्टों का कारण हमारे सामाजिक पाप हैं। संपूर्ण मनुष्य जाति एक ही सूत्र में बँधी हुई है। विश्वव्यापी जीव तत्त्व एक है। आत्मा सर्वव्यापी है। जैसे एक स्थान पर यज्ञ करने से अन्य स्थानों का भी वायुमंडल शुद्ध होता है और एक स्थान पर दुर्गंध फैलने से उसका प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ता है, इसी प्रकार एक मनुष्य के कुत्सित कर्मों के लिए दूसरा भी जिम्मेदार है। एक दुष्ट व्यक्ति अपने माता-पिता को लज्जित करता है, अपने घर व कुटुंब को शर्मिंदा करता है। वे इसलिए शर्मिंदा होते हैं कि उस व्यक्ति के कामों से उनका कर्त्तव्य भी बँधा हुआ है। अपने पुत्र, कुटुंबी या घर वाले को सुशिक्षित, सदाचारी न बनाकर दुष्ट क्यों हो जाने दिया? इसकी आध्यात्मिक जिम्मेदारी कुटुंबियों की भी है। कानून द्वारा अपराधी को ही सजा मिलेगी, परंतु कुटुंबियों की आत्मा स्वयमेव शर्मिंदा होगी, क्योंकि उनकी गुप्त शक्ति यह स्वीकार करती है कि हम भी किसी हद तक इस मामले में अपराधी हैं। सारा समाज एक सूत्र में बँधा होने के कारण आपस में एक-दूसरे की हीनता के लिए जिम्मेदार है। पड़ोसी का घर जलता रहे और दूसरा पड़ोसी खड़ा-खड़ा तमाशा देखे, तो कुछ देर बाद उसका भी घर जल सकता है। मुहल्ले के एक घर में हैजा फैले और दूसरे लोग उसे रोकने की चिंता न करें, तो उन्हें भी हैजा का शिकार होना पड़ेगा। कोई व्यक्ति किसी की चोरी, बलात्कार, हत्या, लूट आदि होती हुई देखता रहे और सामर्थ्य होते हुए भी उसे रोकने

का प्रयास न करे, तो समाज उससे घृणा करेगा एवं कानून के अनुसार यह भी दंडनीय समझा जाएगा।

ईश्वरीय नियम है कि हर मनुष्य स्वयं सदाचारी जीवन बिताए और दूसरों को अनीति पर न चलने देने के लिए भरसक प्रयत्न करे। यदि कोई देश या जाति अपने तुच्छ स्वार्थों में संलग्न होकर दूसरों के कुकर्मों को रोकने और सदाचार बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करती, तो उसे भी दूसरों का पाप लगता है। उसी स्वार्थपरता के सामूहिक पाप से सामूहिक दंड मिलता है। भूकंप, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष महामारी, महायुद्ध के कारण ऐसे ही सामूहिक दुष्कर्म होते हैं, जिनमें स्वार्थपरता को प्रधानता दी जाती है और परोपकार की उपेक्षा की जाती है।

देखा जाता है कि अन्याय करने वाले अमीरों की अपेक्षा मूक पशु की तरह जीवन बिताने वाले भोले-भाले लोगों पर दैवी प्रकोप अधिक होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि का कष्ट गरीब किसानों को ही अधिक सहन करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला अधिक बड़ा पापी होता है। कहते हैं कि "बुजदिल जालिम का बाप होता है।" कायरता में यह गुण है कि वह अपने ऊपर जुल्म करने के लिए किसी न किसी को न्यौत बुलाती है। भेड़ की ऊन गड़रिया छोड़ देगा तो दूसरा कोई न कोई उसे काट लेगा। कायरता, कमजोरी, अविद्या स्वयं बड़े भारी पातक हैं। ऐसे पातकियों पर यदि भौतिक कोप अधिक हों तो कुछ आश्चर्य नहीं? संभव है कि उनकी कायरता को दूर करने एवं स्वाभाविक सतेजता जगाकर निष्पाप बना देने के लिए अदृश्य सत्ता द्वारा यह घटनाएँ उपस्थित होती हों। यह भौतिक दुर्घटनाएँ सृष्टि के दोष नहीं है वरन अपने ही दोष हैं। अग्नि में तपा कर सोने की तरह हमें शुद्ध करने के लिए यह कष्ट बार-बार कृपापूर्वक आया करते हैं और संसार को जोरदार चेतावनियाँ देकर सामाजिक निष्पापता बढ़ाने का आदेश दिया करते हैं।

दैविक, दैहिक, भौतिक दुःखों का कुछ विवेचन ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। अब हम इसी लेखमाला के अंतर्गत यह बताएँगे कि किस प्रकार के पाप-पुण्यों का फल कितने-कितने समय में मिलता है?

कर्मों की तीन श्रेणियाँ

तीन दु:खों का निरूपण करने से पूर्व कर्म के तीन प्रकारों को जान लेना आवश्यक है। (१) संचित, (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण, इन तीन प्रकार के कर्मों का संचय हमारी संस्कार भूमिका में होता है। चित्रगुप्त का परिचय लेख के अंतर्गत पाठक पढ़ चुके हैं कि मनुष्य की अंत:चेतना ऐसी निष्पक्ष, निर्मल, न्यायशील और विवेकवान है कि अपने पराए का कुछ भी भेदभाव न करके सत्यनिष्ठ न्यायाधीश की तरह हर एक भले-बुरे काम का विवरण अंकित करती रहती है।

संचित : दिन भर के कामों का यदि निरीक्षण किया जाय, तो वे तीन श्रेणियों में बाँट देने पड़ेंगे। कुछ तो ऐसे होते हैं, जो बिना जानकारी में होते हैं, जैसे बुरे लोगों के मुहल्ले में या सत्संग में रहने से उनका प्रभाव किसी न किसी अंश में गुप्त रूप से अपने ऊपर पड़ जाता है। यह प्रभाव पड़ा तो परंतु हमने उसे इच्छापूर्वक स्वीकार नहीं किया इसलिए वह हलका, निर्बल एवं कम प्रभाव वाला होकर हमारी भीतरी चेतना के एक कोने में पड़ा रहा, ऐसे हीन वीर्य संस्कार बनाने वाले, संचित कर्म कहे जाते हैं। जो कार्य विवशता में, दबाए जाने पर, असहाय अवस्था में करने तो पड़ें, पर मन की आंतरिक इच्छा यही रही कि यदि विवशता न होती तो इस काम को मैं कदापि न करता। इस तरह लाचारी से जो काम करना पड़े और मन जिनके विरुद्ध विद्रोह करता रहा एवं उस काम को स्वभाव बनाकर अपना नहीं लिया, तो उस कार्य का संस्कार भी हलका अल्प वीर्य और कम प्रभाव वाला होता है। ऐसे काम भी संचित कर्म की ही श्रेणी में आ जाते हैं। इन संचित कर्मों के संस्कार बहुत कमजोर एवं हलके होते हैं, इसलिए वे मनोभूमि के किसी अज्ञात कोने में सिमटे हुए हजारों वर्ष तक पड़े रहते हैं, यदि इन्हें प्रकट होने का कोई अच्छा अवसर न मिले, तो यों ही दबे दबाए पड़े रहते हैं, किंतु यदि उसी प्रकार के बुरे कर्म कभी जानबूझ कर स्वेच्छा से, विशेष मनोयोग के साथ किए गए, तो वे सड़े-गले संचित संस्कार भी कुलबुलाने लगते हैं। जैसे अच्छे घोड़ों के झुंड में पड़कर लँगड़े घोड़े भी चलने लगते हैं, वैसे ही वे भी कब्र में से निकल कर जीवित हो जाते हैं। जिस प्रकार घुना हुआ बीज भी अच्छी

भूमि और अच्छी वर्षा पाकर उग आता है, वैसे ही संचित संस्कार भी अपनी जाति के बलवान कर्मों की सहायता पाकर उग आते हैं। हिमायत पाकर उनकी हिम्मत दूनी हो जाती है, परंतु यदि उन संचित संस्कारों को लगातार विपरीत स्वभाव के बलवान कर्म संस्कारों के साथ रहना पड़े, तो वे नष्ट भी हो जाते हैं। गरम जगह में रखा हुआ एक घड़ा पानी गरमी के प्रभाव से आखिर एक-दो महीने में सूख जाता है, इसी प्रकार उत्तम कर्मों के संस्कार जमा हो रहे हों, तो वे बेचारे बुरे संस्कार उनकी गरमी में जलकर नष्ट भी हो जाते हैं। धर्म ग्रंथों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि तीर्थयात्रा आदि अमुक शुभ कर्म करने से इतने जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, असल में वह संकेत इन अल्पवीर्य वाले संचित संस्कारों के संबंर्ष में ही है। भले ओर बुरे दोनों ही प्रकार के संचित कर्म संस्कार अनुकूल परिस्थिति पाकर फलदायक होते हैं एवं तीव्र प्रतिकूल परिस्थितियों में नष्ट भी हो जाते हैं।

प्रारब्ध : वे मानसिक कर्म होते हैं, जो स्वेच्छापूर्वक जानबूझकर, तीव्र भावनाओं से प्रेरित होकर किए जाते हैं। इन कार्यों को विशेष मनोयोग के साथ किया जाता है, इसलिए उनका संस्कार भी बहुत बलवान बनता है। हत्या, खून, डकैती, विश्वासघात, चोरी, व्यभिचार जैसे प्रचंड क्रूरकर्मों की प्रतिक्रिया अंत:करण में बहुत ही तीव्र होती है, उस विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल देने के लिए आध्यात्मिक पवित्रता निरंतर व्यग्र बनी रहती है और एक न एक दिन उसे निकाल कर बाहर कर ही देती है।

हम बता चुके हैं कि हमारी अंत:चेतना न्यायाधीश की तरह हमारे हर काम को देखती रहती है और उसकी न्यूनता-अधिकता के परिणाम के अनुसार दंड की व्यवस्था करती रहती है। चूँकि मानसिक दंड अपने आप अंदर ही अंदर पूरा नहीं हो सकता, इसके लिए दूसरे साधनों की भी आवश्यकता होती है, दंड कार्य को पूरा करने के लिए सूक्ष्म लोक में से उसी प्रकार का घटनाक्रम उपस्थित करने के लिए हमारी अंत:चेतना एक वातावरण तैयार करती है। इस तैयारी में कभी बहुत समय भी लग जाता है। जैसे छल स्वभाव के निवारण के लिए शोक रूपी दंड की आवश्यकता है। अब यह देखा जाएगा कि छल किस दरजे का है, उसकी शुद्धि किस

दर्जे के शोक से पूरी हो सकती है। अंत:चेतना वैसी ही परिस्थितियाँ पैदा करने में भीतर ही भीतर लगी रहेगी। वह शरीर में ऐसे तत्त्व पैदा करेगी, जिससे पुत्र उत्पन्न हो, उस पुत्र शरीर में ऐसी आत्मा का मेल मिलवाएगी, जिसे अपने कर्मों के अनुसार दस वर्ष ही जीना पर्याप्त हो, दस वर्ष का पुत्र हो जाने पर वही हमारी अंत:चेतना गुप्त रूप से पुत्र पर पिल पड़ेगी और उसे रोगी करके मार डालेगी एवं शोक का इच्छित अवसर पैदा कर देगी। ऐसे अवसर तैयार करने में केवल अपना ही कार्य अकेला नहीं होता, वरन दूसरे पक्ष का भी कार्य होता है। दोनों ओर की चेतनाएँ अपने-अपने अवसर तलाश करती फिरती हैं और फिर जब उन्हें इच्छित जोड़ मिल जाता है, तो एक घटना की ठीक भूमिका बँध जाती है। ऐसे कार्यों में कई बार एक, दो, तीन या कई जन्मों का समय लग जाता है। लड़की के लिए वर और वर के लिए लड़की की तलाश बहुत दिनों तक जारी रहती है, सैकड़ों प्रसंग उठाए जाते हैं, पर कुछ न कुछ कमी होने से वे तय नहीं होते, जब दोनों पक्ष रजामंद हो जाते हैं, तो विवाह जल्द हो जाता है। इसी प्रकार पिता को पुत्र शोक और पुत्र को अल्पायु का संयोग, जब दोनों ही विधान ठीक बैठ जाते हैं, तो वे एकत्रित हो जाते हैं। अफ्रीक में वेन्सस नामक एक दस फुट ऊँचा एक झाड़ होता है, इसकी डालियों में से सूत जैसे अंकुर फूटते हैं। यह अंकुर बढ़ते हैं और इधर-उधर हवा में झूलते रहते हैं। दूसरा कोई अंकुर जब उससे छू जाता है, तो वे दोनों आपस में गुथ जाते हैं और रस्सी की तरह बल डालकर एक हो जाते हैं। जब तक दूसरे अंकुर से भेंट न हो, तब तक सूत बढ़ते ही रहते हैं और कभी न कभी वे किसी न किसी से मिल ही जाते हैं। कोई सूत तो चार-छ: अंगुल दूरी पर ही जाकर किसी से मिलकर लिपट जाता है, कोई-कोई चार फुट लंबा होने के बाद सफल होता है। यही हालत कर्मफल की है। शारीरिक दंड एकांगी है विष खाते ही तुंरत मृत्यु हो जाती है, परंतु मानसिक दंड में अपवाद है। जैसे क्रूरता से प्रेरित होकर किसी की हत्या की गई, वह यदि प्रकट हो गई, तो राज्य द्वारा दंड मिल जाएगा, किंतु यदि हत्यारे ने अपना कार्य छिपा लिया तो उसका अंत:करण तुरंत ही पाप दंड न दे बैठेगा, वरन उसी दिन से वेन्सस पेड़ की तरह अंकुर फोड़कर इस तलाश में फिरेगा

कि हिंसा वृत्ति से घृणा कराने के लिए हिंसा से जो दुःख होता है, उसका अनुभव उसे कराऊँ। जब दूसरी ओर का भी कोई अंकुर मिल जाता है, तो दोनों आपस में लिपट कर एक निर्धारित घटना की भूमिका बन जाते हैं। उपरोक्त कारणों से कभी-कभी अचानक सत्कर्म करते हुए भी सुख उपस्थित हो जाता है और कभी-कभी बुरे काम करते हुए भी कोई दुःख उपस्थित हो जाता है और कभी-कभी बुरे काम करते हुए भी दुःख नहीं मिलता है, इसका कारण उपयुक्त अवसर तैयार होने में विलंब लगना ही होता है।

कोई-कोई आत्मदर्शी योगी यह बता देते हैं कि भविष्य में तुम्हारे लिए यह होने वाला है और सचमुच वैसा हो भी जाता है। ऐसे अवसरों पर ऐसा संदेह न करना चाहिए कि मनुष्य परतंत्र है, प्रारब्ध में जो लिख है, वही होता है। आत्मदर्शी महानुभाव का भविष्य कथन मनुष्य परतंत्रता के कारण नहीं है वरन इसलिए है कि उन्होंने देख लिया कि इसका प्रारब्ध कर्म अब अपना ताना-बुना बुन चुका है, उसका छूटना मुश्किल है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वे अदृश्य परिस्थिति को देखकर उसे प्रकट कर देते हैं। मिसल को देखकर, हाकिम के स्वभाव को जानकर पेशकार बता देता है कि क्या फैसला सुनाया जाने वाला है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि मुद्दई, मुद्दा, सबूत, वकील का कोई महत्त्व नहीं है। इसके प्रारब्ध में क्या लिखा है, यह बता देने का अर्थ यह है इसने एक समय ऐसे काम किए थे जिसका फल अब यह होने जा रहा है। तकदीर और तदवीर दो बातें नहीं है वरन एक ही वस्तु के दो नाम हैं। कर्म का परिपाक लेकर जब वह फल बनता है, तब तकदीर कहा जाता है। कच्चा आम तदवीर है और पक्का आम तकदीर। नया कर्म तदवीर है, जो आगे तकदीर बन जाएगा। इसी प्रकार पुरानी तदवीर आज फल देते समय तकदीर कही जा रही है। कर्म बछिया है और प्रारब्ध बूढ़ी गाय। समय के अंतर से एक वस्तु के दो नाम पड़ गए हैं।

पाठक समझ गए होंगे कि मानसिक पापों का फल किस प्रकार मिलता है और उसमें विलंब हो जाने का क्या कारण है। दैनिक आपत्तियाँ क्रमपूर्वक, व्यवस्था के साथ आती हैं, पर लोग उन्हें दैव का प्रकोप,

ईश्वर-इच्छा, संसार दु:खमय है आदि शब्दों के द्वारा मन में संतोष करते हैं। यथार्थ में ईश्वर किसी के लिए भी दु:ख-शोक उपस्थित नहीं करता, न उसकी किसी को कष्ट में डालने की इच्छा है और न यह संसार ही दु:खमय है। मकड़ी अपने आप जाला बुनती है और उसमें खुद फँसती, उलझती, लटकती रहती है। मन को अशुभ, अधर्मी, पापी बनाकर अपने लिए दु:ख-द्वंद्वों के काँटे खुद ही बोते हैं और जब वे चुभते हैं, तो रोते-चिल्लाते हैं तथा दूसरों को दोष देते हैं। यहाँ एक बात और भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि प्रारब्ध फल आकस्मिक तरीके से मिलेगा जैसे रोग से मृत्यु, मकान गिर पड़ना, धन खो जाना, गिर पड़ने से चोट लगना, अंग भंग हो जाना आदि। दूसरे व्यक्तियों द्वारा जानबूझ कर ऐसे कर्म नहीं किए जाते, क्योंकि उसमें दो बुराइयाँ हैं, एक तो अपकार करने वाले व्यक्ति के लिए क्षोभ उत्पन्न होने से वे दुर्गुण और बढ़ेंगे, जिससे मन की उद्विग्नता और अधिक बढ़ जाएगी, दूसरे अपकार करने वाले व्यक्ति को उसी चक्र में फँसाना पड़ेगा। जानबूझ कर व्यक्तियों द्वारा जो कर्म किए जा रहे हैं वे नवीन कर्म हैं और अनायास, आकस्मिक ढंग से कष्ट आ पड़ता है, वे प्रारब्ध के भोग हैं।

क्रियमाण : कर्म शारीरिक हैं, जिनका फल प्राय: साथ के साथ ही मिलता रहता है। नशा पिया कि उन्माद आया। विष खाया कि मृत्यु हुई । शरीर जड़ तत्त्वों का बना हुआ है। भौतिक तत्त्व स्थूलता प्रधान होते हैं। उनमें तुरंत ही बदला मिलता है। अग्नि के छूते ही हाथ जल जाता है। नियम विरुद्ध आहार-विहार करने पर रोगों की पीड़ा का, निर्बलता का अविलंब आक्रमण हो जाता है और उसकी शुद्धि भी शीघ्र हो जाती है। मजदूर परिश्रम करता है, बदले में उसे पैसे मिल जाते हैं। जिन शारीरिक कर्मों के पीछे कोई मानसिक गुत्थी नही होती केवल शरीर द्वारा शरीर के लिए किए जाते हैं, वे क्रियमण कहलाते हैं। पाठक समझ गए होंगे कि संचित कर्मों का फल मिलना संदिग्ध है यदि अवसर मिलता है, तो वे फलवान होते हैं, नहीं तो विरोधी परिस्थितियों से टकरा कर नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध कर्मों का फल मिलना निश्चित है, परंतु उसके अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने में कुछ समय लग जाता है। यह समय कितने दिन

का होता है, इस संबंध में कुछ नियम मर्यादा नहीं है, वह आज का आज भी हो सकता है और कुछ जन्मों के अंतर से भी हो सकता, किंतु प्रारब्ध फल होते वही हैं, जो अचानक घटित हों और जिसमें मनुष्य का कुछ वश न चले। पुरुषार्थ की अवहेलना से जो असफलता मिलती है, उसे कदापि प्रारब्ध फल नहीं कहा जा सकता। क्रियमाण तो प्रत्यक्ष हैं ही उनके बारे में ऊपर बता ही दिया गया है कि निश्चित फल वाले शारीरिक कर्म क्रियमाण हुआ करते हें। इनके फल मिलने में अधिक समय नहीं लगता। इस प्रकार तीन प्रकार के कर्म और उसके फल मिलने की मर्यादा के संबंध में ऊपर कुछ प्रकाश डाल दिया गया है।

कष्टों का स्वरूप अप्रिय है, उनका तात्कालिक अनुभव कडुआ होता है, अंततः वे जीव के लिए कल्याणकारी और आनंददायक सिद्ध होते हैं। उनसे दुर्गुणों के शोधन और सद्‌गुणों की वृद्धि में असाधारण सहायता मिलती है। आनंदस्वरूप, आत्म प्रकाशमय जीवन और सुखमय संसार में कष्टों का थोड़ा स्वाद परिवर्तन इसलिए लगाया गया है कि प्रगति में बाधा न पड़ने पाए। घड़ी में चाबी भर देने से उसकी चाल फिर ठीक हो जाती है, हारमोनियम में हवा धोंकते रहने से उसके स्वर ठीक तरह बजते हैं, पैडल चलाने से साइकिल ठीक तरह घूमती है, अग्नि की गर्मी से सूखकर भोजन पक जाते हैं। थोड़ा-सा कष्ट भी जीवन की सुख वृद्धि के लिए आवश्यक है। संसार में जो कष्ट है वह इतना ही है और ऐसा ही है, किंतु स्मरण रखिए जितना भी थोड़ा-बहुत दुःख है, वह हमारे अन्याय का, अधर्म का, अनर्थ का फल है। आत्मा दुःख रूप नहीं है, जीवन दुःखमय नहीं है और न संसार में ही दुःख है।

आप दुःखों से डरिए मत। घबराइए मत, काँपिए मत, उन्हें देखकर चिंतित या व्याकुल मत हूजिए वरन सहन करने को तैयार रहिए। कटुभाषी किंतु सच्चे सहृदय मित्र की तरह उससे भुजा पसारकर मिलिए। वह कटु शब्द बोलता है, अप्रिय समालोचना करता है, तो भी जब जाता है तो बहुत सा माल खजाना उपहार स्वरूप दे जाता है। बहादुर सिपाही की तरह सीना खोलकर खड़े हो जाइए और कहिए कि 'ऐ आने वाले दुःखो!

आओ!! ऐ मेरे बालको, चले आओ !! मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है, मैं ही तुम्हें अपनी छाती से लगाऊँगा। दुराचारिणी वेश्या की तरह तुम्हें जार पुत्र समझकर छिपाना या भगाना नहीं चाहता वरन सती साध्वी के धर्मपुत्र की तरह मेरे आँचल में सहर्ष क्रीड़ा करो। मैं कायर नहीं हूँ, जो तुम्हें देखकर रोऊँ, मैं नपुंसक नही हूँ, जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़गिड़ाऊँ, मैं मिथ्याचारी नहीं हूँ, जो अपने किए कर्म का फल भोगने से मुँह छिपाता फिरूँ। मैं सत्य हूँ, शिव हूँ, सुंदर हूँ, आओ मेरे अज्ञान के कुरूप मानस पुत्रो! मेरी कुटी में तुम्हारे लिए भी स्थान है। मैं शूरवीर हूँ, इसलिए हे कष्टो! तुम्हें स्वीकार करने से मुँह नहीं छिपाता और न तुमसे बचने के लिए किसी की सहायता चाहता हूँ। तुम मेरे साहस की परीक्षा लेने आए हो, मैं तैयार हूँ, देखो गिड़गिड़ाता नहीं हूँ, साहसपूर्वक तुम्हें स्वीकार करने के लिए छाती खोले खड़ा हूँ।'

खबरदार! ऐसा मत कहना कि 'यह संसार बुरा है, दुष्ट है, पापी है, दुःखमय है, ईश्वर की पुण्य कृति, जिसके कण-कण में उसने कारीगरी भर दी है, कदापि बुरी नहीं हो सकती। सृष्टि पर दोषारोपण करना, तो उसके कर्त्ता पर आक्षेप करना होगा, "यह घड़ा बहुत बुरा बना है" इसका अर्थ है कुम्हार को नालायक बताना। आपका पिता इतना नालायक नहीं है, जितना कि आप "दुनियाँ दुःखमय है" यह शब्द कहकर उसकी प्रतिष्ठा पर लाँछन लगाते हैं। ईश्वर की पुण्य भूमि में दुःख का एक अणु भी नहीं है। हमारा अज्ञान ही हमारे लिए दुःख है। आइए, अपने अंदर के समस्त कुविचारों और दुर्गुणों को धोकर अंतःकरण को पवित्र कर लें, जिससे दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाए और हम परम पद को प्राप्त कर सकें।

अपनी दुनिया के स्वयं निर्माता

एक दार्शनिक का मत है कि संसार एक निष्प्राण वस्तु है। इसे हम जैसा बनाना चाहते हैं, यह वैसा ही बन जाता है। जीव चैतन्य है और कर्त्ता है। संसार पदार्थ है और जड़ है। चैतन्य कर्त्ता में यह योग्यता होती है कि वह जड़ पदार्थ की इच्छा और आवश्यकता का उपयोग कर सके। कुम्हार के सामने मिट्टी रखी हुई है, वह उससे घड़ा भी बना सकता है

और दीपक भी। सुनार के सामने सोना रखा हुआ है, वह उससे मनचाहा आभूषण बना सकता है। दरजी के हाथ में सुई है और कपड़ा भी। वह चाहे तो कुर्त्ता सी सकता है, चाहे पाजामा। संसार ठीक इसी प्रकार हमारे सामने रखा हुआ है। उसमें सत, रज, तम तीनों का मिश्रण है। चुनने वाला आदमी अपनी मरजी के मुताबिक उनमें से चाहे जो वस्तु चुन सकता है। बाग में कीचड़ भी है, गंदगी भी है और फूलों की सुगंध भी है। कीड़े कीचड़ में घुस पड़ते हैं, मक्खियों गंदगी खोज निकालती हैं और भौंरे सुगंधित फूल पर जा पहुँचते हैं। सबको अपनी इच्छित वस्तु मिल जाती है। चमगादड़ और उल्लू रात में भी प्रकाश फैलाते हैं, मधु-मक्खियों को घास के बीच मिठाई के ढेर मिल जाते हैं, साँप को ओस में भी विषवर्द्धक तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं। त्रिगुणमयी प्रकृति में तीनों तरह की वस्तुएँ मौजूद हैं। इस दुकान पर खट्टा, मीठा, नमकीन, तीनों तरह का सौदा बिकता है। तो जैसा ग्राहक आता है, अपनी मन पसंद का सामान खरीद ले आता है। इस संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। हर वस्तु के गोदाम भरे हुए हैं। माता ने षट्रस व्यंजन तैयार करके रखे हैं जिस बच्चे की जो रुचि हो, खुशी-खुशी खा सकता है।

त्रिगुणामयी प्रकृति के दोनों पहलू मौजूद हैं, एक भला, दूसरा बुरा, एक काला, दूसरा सफेद, एक धर्म, दूसरा अधर्म, एक सुख, दूसरा दुःख। चुनाव की पूरी-पूरी आजादी आपको है। दुनियाँ का असली रूप क्या है, यह आरंभ में ही बताया जा चुका है, पर एक एक तात्त्विक व्याख्या है, व्यावहारिक दृष्टि से हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनियाँ है। एक व्यक्ति चोर है, उसके मानसिक आकर्षण से बहुत से चोरों से उसकी मैत्री हो जाएगी और जेल में, समाज में. घर में सब जगह उसे चोरी की ही चरचा मिलेगी। घर वाले उससे बात करेंगे, तो चोरी की, माता बुरा बताएगी, स्त्री अच्छा, कोई चोरी का समर्थन करेगा, कोई विरोध करेगा। घर से बाहर निकलने पर उसके परिचित लोग उससे जब मिलेंगे, उसके पेशे चोरी के बारे में ही भला-बुरा वार्तालाप करेंगे, अपने साथी चोरों से मिलेगा, तो वही चोरी की बातें होंगी, जेल में भी चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह मिल बैठेंगे और अपने प्रिय विषय की बातें खूब घुल-घुल कर

करेंगे। इस प्रकार उस चोर के लिए यह सारा संसार चोरी की धुरी पर नाचता हुआ दिखाई देगा, उसको विश्व का सबसे बड़ा काम चोरी ही दिखाई पड़ेगा। अन्य बातों की ओर उसका ध्यान बहुत ही स्वल्प जाएगा। अन्य कार्यों पर उसकी उपेक्षा दृष्टि ही पड़ेगी। इसी प्रकार व्यभिचारी व्यक्ति की दृष्टि में संपूर्ण स्त्रियाँ वेश्याएँ, व्यभिचारिणी, कुमार्गगामिनी दिखाई देंगी, उसी प्रकार की पुस्तकें, तस्वीरें खिंच-खिंच कर उसके पास जमा हो जाएँगी। संगी-साथी उसी प्रकार के मिल जाएँगे, उसके मस्तिष्क में सबसे बड़ा प्रश्न काम-वासना संबंधी ही खड़ा रहेगा। नशेबाज अपने स्वभाव के भाई-वृंदों को समेटकर अपनी अलग दुनिया बना लेते हैं।

एक ही व्यक्ति कई लोगों को कई प्रकार का दिखाई पड़ता है। माता उसे स्नेह भाजन मानती है, पिता आज्ञाकारी पुत्र मानता है, गुरु सुयोग्य शिष्य समझता है, मित्र हँसोड़ साथी समझते हैं, स्त्री प्राणवल्लभ मानती है, पुत्र उसे पिता समझता है, शत्रु वध करने योग्य समझता है, दुकानदार ग्राहक समझता है, नौकर मालिक मानता है, घोड़ा सवार समझता है, पालतू सुग्गा उसे कैदी बनाने वाला जेलर दीखता है। खटमल, पिस्सू उसे स्वादिष्ट खून से भरा हुआ कोठा समझते हैं। यदि इन सभी संबंधियों की माता, पिता, गुरु, मित्र, स्त्री, पुत्र, शत्रु, दुकानदार, नौकर, घोड़ा, सुग्गा, खटमल, पिस्सू आदि की उन मानसिक भावनाओं का चित्र आपको दिखाया जा सके तो आप देखेंगे कि उस एक ही व्यक्ति के संबंध में यह सब संबंधी कैसी-कैसी विचित्र कल्पना किए हुए हैं, जो एक-दूसरे से बिलकुल नहीं मिलतीं। इनमें से एक भी कल्पना ऐसी नहीं है, जो उस व्यक्ति के ठीक-ठीक और पूरे स्वरूप को प्रकट करती हो। जिसे उससे जितना एवं जैसा काम पड़ता है, वह उसके संबंध में वैसी ही कल्पना कर लेता है। तमाशा तो यह है कि वह मनुष्य स्वयं भी अपने बारे में एक ऐसी कल्पना किए हुए है। मैं वेश्या हूँ, लखपति हूँ, वृद्धा हूँ, पुत्र रहित हूँ, कुरूप हूँ, गणमान्य हूँ, दुःखी हूँ, बुरे लोगों से घिरा हुआ हूँ आदि नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर लेता है और उस कल्पना लोक में जीवन भर विचरण करता रहता है। जैसे दूसरे लोग उसके बारे में अपने मतलब की कल्पना कर लेते हैं, वैसे ही मन भी अपने बारे में इंद्रियों की अनुभूति के

आधार पर अपने संबंध में एक लँगड़ी-लूली कल्पना कर लेता है और उसी कल्पना में लोग नशेबाज की तरह उड़ते रहते हैं।'' इस मर्म को यदि वह किसी दिन समझ पाए, तो जाने कि मैंने अपने बारे में कितनी गलत धारणा बना रखी थी।

लोग ऐसी ही अपनी-अपनी भावुकता पूर्ण मानसिक उड़ान के हवाई घोड़ों पर चढ़कर सच्चाई के बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते रहते हैं और उसी नशे में कोई मन के लड्डू खाया करता है। कोई मन के चने चबाया करता है, कोई शराबी सामने वाली दीवार को गालियाँ देकर अपना सिर फोड़ रहा है और कोई कुत्ते को बाहुपाश में कसकर प्रियतमा को चुंबन-आलिंगन का मजा ले रहा है। हम लोग अज्ञान के नशे में सो रहे हैं। किसी को महलों के सपने आ रहे हैं, कोई भयंकर दुःस्वप्न देखकर भयभीत हो रहा है। किसी शेखचिल्ली की शादी हो रही है, कोई पगला अमीरी और बादशाही बघार रहा है। दुनिया के पागल खाने में तरह-तरह की खोपड़ियाँ डोल रही हैं। यह सभी मूर्तियाँ अपने ढंग की विचित्र हैं, सभी अपने को होशियार मान रहे हैं। आप कभी पागलखाना देखने गए हों और अधिक समय तक वहाँ बंद रहने वाले ''बुद्धिमानों'' की बातें सुनी हों, तो आसानी से दुनियादार लोगों के उन स्वप्नों की तुलना कर सकते हैं, जो कि वे दुनिया के बारे में सोते समय देखते रहते हैं।

मनुष्यों को नाना प्रकार के दुःखों में रोते हुए और नाना प्रकार के सुखों में इतराते हुए हम देखते हैं।'' दुनियाँ बहुत बुरी है, जमाना बड़ा खराब है, ईमानदारी का युग चला गया, चारों ओर बेईमानी छाई हुई है, सब लोग धोखेबाज हैं, धर्म धरती पर से उठ गया।'' ऐसी उक्तियाँ जो आदमी बार-बार दुहराता है, समझ लीजिए कि वह खुद धोखेबाज और बेईमान है। इसकी इच्छित वस्तुएँ इसके चारों ओर इकट्ठी हो गई हैं और इनकी सहायता से सुव्यवस्थित कल्पना चित्र इसके मन पर अंकित हो गया है। जो व्यक्ति यह कहा करता है दुनिया में कुछ काम नहीं है, बेकारी का बाजार गरम है, उद्योग-धंधे उठ गए, अच्छे काम मिलते ही नहीं, समझ लीजिए कि इसकी अयोग्यता इसके चेहरे पर

छाई हुई है और जहाँ जाता है, वहाँ के दर्पण में अपना मुख देख आता है। जिसे दुनिया स्वार्थी, कपटी, दंभी, दुःखमय, कलुषित, दुर्गुणी, असभ्य दिखाई पड़ती है, समझ लीजिए कि इसके अंतर में इन्हीं गुणों का बाहुल्य है। दुनिया एक लंबा-चौड़ा बहुत बढ़िया बिल्लौरी काँच का चमकदार दर्पण है, इसमें अपना मुँह हूबहू दिखाई पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा है, इसके लिए त्रिगुणमयी सृष्टि में से वैसे ही तत्त्व निकल कर आगे आ जाते हैं।

क्रोधी मनुष्य जहाँ जाएगा, कोई न कोई लड़ने वाला उसे मिल ही जाएगा। घृणा करने वाले को कोई न कोई घृणित वस्तु मिल ही जाएगी। अन्यायी मनुष्य को सब लोग बड़े बेहूदे, असभ्य और दंड देने योग्य दिखाई पड़ते हैं। होता यह है कि अपनी मनोभावनाओं को मनुष्य अपने सामने वालों पर थोप देता है और उन्हें वैसा ही समझता है जैसा कि वह स्वयं है। साधुओं को असाध्वी स्त्रियों से पाला नहीं पड़ता, विद्याभ्यासियों को सद्ज्ञान मिल ही जाता है, जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा पूरी होती ही है, सतयुगी आत्माएँ हर युग में रहती हैं और उनके पास सदैव सतयुग बरतता रहता है।

हमारा यह कहने का तात्पर्य कभी नहीं है कि दुनिया दूध से धुली हुई है और आप अपने दृष्टि दोष से ही उसे बुरा समझ बैठते हैं। पीछे की पंक्तियों में यह बार-बार दुहराया जा चुका है कि दुनिया त्रिगुणमयी है। हर एक वस्तु तीन गुणों से बनी हुई है। उसमें आपसे छोटे दरजे के बच्चे भी पढ़ते हैं आपकी सम कक्षा में पढ़ने वाले भी हैं और वे भी हैं जो आपसे बहुत आगे हैं। तीनों ही किस्म के लोग यहाँ हैं। सतोगुणी वे विद्यार्थी हैं, जो आपसे ऊँची कक्षा के हैं, रजोगुणी वे हैं, जो सम कक्षा में पढ़ रहे हैं, तमोगुणी पिछली कक्षा वाले को कह सकते हैं। डाकू की तुलना में चोर सतोगुणी है, क्योंकि डाकू की अपेक्षा चोर में उदारता के कुछ अंश अधिक हैं, किंतु चोर और डाकू दोनों से श्रमजीवी मजदूर ऊँचा है, उससे ब्राह्मण बड़ा है और ब्राह्मण से साधु बड़ा है। डाकू से साधु बहुत ऊँचा है, पर जीवनमुक्त आत्माओं में साधु भी उतना ही नीचा है, जितना साधु से डाकू। यह डाकू क्या सबसे नीचा है, नहीं, सर्प से वह भी ऊँचा है। सर्प अपनी सर्पिनी के लिए उदार है, डाकू अपने परिवार में

उदारता बरतता है, चोर अपने परिचित के यहाँ चोरी नहीं करता, ब्राह्मण अपनी जाति के कल्याण में दत्तचित्त रहता है, साधु मानव मात्र से उदारता बरतता है, जीवन मुक्तों को मनुष्य या चींटी के बीच कुछ अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वह सर्वत्र एक ही आत्मा को देखता है। तात्पर्य यह है कि परमपद पाने से पूर्व हर एक प्राणी अपूर्ण है, उसमें नीच स्वभाव कुछ न कुछ रहेगा ही। जिस दिन सारी नीचता समाप्त हो जाएगी, उस दिन तो वह उन्नति के अंतिम शिखर पर पहुँचकर चरम ध्येय को ही प्राप्त कर लेगा। सृष्टि का हर प्राणी आज के वर्तमान स्वरूप मैं अपूर्ण है। अपूर्ण का अर्थ है—सदोष। बेशक सब मिलाकर दोष से गुण ज्यादा हैं। अधर्म बेशक मौजूद है, पर उससे धर्म ज्यादा है, अँधेरा बहुत है, पर उससे प्रकाश ज्यादा है। दुनिया वाले बहुत खराब हैं, पर उसमें खराबी से कहीं ज्यादा अच्छाई मौजूद है। हमें उस अच्छाई पर ही अपनी दृष्टि रखनी चाहिए, अच्छाई से ही आनंद लेना चाहिए और अच्छाई को ही बढ़ाना चाहि। दिन में हम जगते हैं, प्रकाश में काम करते हैं, उजाले में रहना पसंद करते हैं। जब रात का अँधेरा सामने आता है, तो आँखें बंद करके सो जाते हैं, जिन्हें रात में भी काम करना है, वे दीपक जला लेते हैं। हमारी यह उजाले में काम करने, अँधेरे में सो जाने की प्रवृत्ति यह सिखाती है कि संसार के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए। किसी आदमी में क्या सद्‌गुण है, उसे खोज निकालिए और उन्हीं से संपर्क रखिए, उन्हीं में आनंद लीजिए, उन्हें ही प्रोत्साहित कीजिए, जो दोष हों उन्हें भी देखिए तो सही, पर उनमें उलझिए मत। रात की तरह आँख बंद कर लीजिए। महर्षि दत्तात्रेय की कथा जानने वालों को विदित होगा कि जब तक वे दुनियाँ के काले और सफेद दोनों पहलुओं का समन्वय करते रहे, तब तक बड़े चिंतित और दुःखी रहे। जब उन्होंने कालेपन से दृष्टि हटा ली और सफेदी पर ध्यान दिया, तो उन्हें सभी जीव आदरणीय, उपदेश देने वाले और पवित्र दिखाई पड़े, उन्होंने चौबीस गुरु बनाए, जिनमें कुत्ता, बिल्ली, सियार, मकड़ी, मक्खी, चील, कौए जैसे जीव भी थे। उन्हें प्रतीत हुआ कि कोई भी प्राणी घृणित नहीं। सबके अंदर महान आत्मा है और वे महानता के लिए आगे बढ़ जाते हैं, जब हम अपनी दृष्टि

को गुण ग्राहक बना लेते हें, तो दुनिया का सारा तख्ता पलट जाता है, दोष के स्थान पर गुण, बुराई के स्थान पर भलाई, दुःख के स्थान पर सुख आ बैठता है। बहुत बुरी दुनिया, बहुत अच्छी बन जाती है।

तिल की ओट ताड़ छिपा हुआ है। भूल-भुलैया के खेल में चोर दरवाजा जरा सी गलती के कारण छू जाता है। बाजीगर एक पोली लकड़ी रखता है, उसमें एक तरफ डोरा पीला होता है, दूसरी तरफ नीला। इस छेद में से डोरा खींचता है, तो पीला निकलता है और उधर से खींचने पर वह नीला हो जाता है। लोग अचंभा करते हैं कि डोरा किस तरह रंग बदलता है, पर उस लकड़ी के पोले भाग में डोरे का एक भाग उलझा रहने के कारण यह अदल-बदल होती रहती है। संसार किसी को बुरा दीखता है, किसी को भला, इसका कारण हमारी दृष्टि की भीतरी उलझन है। इस उलझन का रहस्य भरा सुलझाव यह है कि आप अपना दृष्टिकोण बदल डालिए। अपने पुराने कल्पना जंजालों को तोड़-फोड़ कर फेंक दीजिए। तरह-तरह के उलझनों भरे जाल जो मस्तिष्क में बुन गए हैं, उन्हें उखाड़ कर एक कोने में मत डाल दीजिए। अपना तीसरा नेत्र, ज्ञान नेत्र खोलकर पुरानी दुनिया को नष्ट कर डालिए। वर्तमान कलियुग को प्रलय के गर्त में गिर पड़ने दीजिए और अपना सतयुग अपने मानस लोक में स्वयं रच डालिए। आप दुनिया को—अँधेरे को तमोगुण को देखना बंद करके प्रकाश को—सतोगुण को देखिए। फिर देखिए कि यह दुनिया जो नरक सी दिखलाई पड़ती थी, एक दिन बाद स्वर्ग बन जाती है। कल आपको अपना पुत्र अवज्ञाकारी लगता था, स्त्री कर्कश प्रतीत होती थी, भाई जान लेने की फिक्र में थे, मित्र कपटी थे, वे अपनी दृष्टि बदलने के साथ ही बिलकुल बदल जाएँगे। कारण यह है कि जितना विरोध दिखाई पड़ता है, वास्तव में उसका सौवाँ हिस्सा ही मतभेद होता है, शेष तो कल्पना के रंग दे देकर बढ़ाया जाता है। पुत्र ने सरल स्वभाव से या किसी अन्य कारण से आपका कहना नहीं माना। आपने समझ लिया कि यह मेरा अपमान कर रहा है। अपमान का विचार आते ही क्रोध आया, क्रोध के साथ अपने सुप्त मनोविकार जागे और उनके जागरण के

साथ एक भयंकर तामसी मानसिक चित्र बन गया। जैसे मन में भय उत्पन्न होते ही झाड़ी में से एक बड़े-बड़े दाँतों वाला, लाल आँखों वाला, काला भूसंड भूत उपज पड़ता है, वैसे ही क्रोध के कारण जगे हुए मनोविकारों का आसुरी मानसिक चित्र पुत्र की देह में से झाड़ी के भूत की तरह निकल पड़ता है। बेचारा पुत्र यह चाहता भी न था कि मैं जानबूझ कर अवज्ञा कर रहा हूँ, यह कोई पाप है या इससे पिताजी नाराज होंगे, पर परिणाम ऐसा हुआ जिसकी कोई आशा न थी। पिताजी आग-बबूला हो गए, घृणा करने लगे, दंड देने पर उतारू हो गए और अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाने लगे। न कुछ का इतना बवंडर बन गया। पुत्र सोचता है कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, खेलने जाने की धुन में पिता को पानी का गिलास देना भूल गया था या उपेक्षा कर गया था, इतनी सी बात पर इतना क्रोध करना, लांछन लगाना, दंड देना कितना अनुचित है। इस अनुचितता के विचार के साथ ही पुत्र को क्रोध आता है, वह भी उसी प्रकार के अपने मनोविकारों को उकसाकर पिता के सरल हृदय में दुष्टता, मूर्खता, क्रूरता, शत्रुता और न जाने कितने-कितने दुर्गुण आरोपित करता है और वह भी एक वैसा ही भूत उपजा लेता है। दोनों में कटुता बढ़ती है। आपस में लड़ते हैं और तिल का ताड़ बना देते हैं। कल्पना का भूत रत्ती भर दोष को, बढ़ाते-बढ़ाते पर्वत के समान बना देता है और वे एक-दूसरे के घोर शत्रु, जान के ग्राहक बन जाते हैं।

हमारे अनुभव में ऐसे अनेकों प्रसंग आए हैं, जब हमें दो विरोधियों में समझौता कराना पड़ा है, दो शत्रुओं को मित्र बनाना पड़ा है। दोनों में विरोध किस प्रकार आरंभ हुआ इसका गंभीर अनुसंधान करने पर पता चला कि वास्तविक कारण बहुत ही स्वल्प था, पीछे दोनों पक्ष अपनी-अपनी कल्पनाएँ बढ़ाते गए और बात का बतंगड़ बन गया। यदि एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें, अपने-अपने भाव एक-दूसरे पर प्रकट कर दें और एक-दूसरे की इच्छा, स्वभाव, मनोभूमि का उदारता से अध्ययन करें, तो जितने आपसी तनाव और झगड़े दिखाई पड़ते हैं, उनका निन्यानवे प्रतिशत भाग कम हो जाए और सौ भाग से एक भाग ही रह जाए। क्लेश-कलह के वास्तविक कारण इतने कम हैं कि उनका स्थान आटे में नमक के बराबर स्वाद परिवर्तन

जितना ही रह जाता है। मिर्च बहुत कड़ुई है और उसका खाना सहन नहीं होता, पर स्वल्प मात्रा में तो रुचिकर है।

नीच योनियों से उठकर मनुष्य जाति के रूप में माता के गर्भ से नवीन प्रसव हुए बालक बहुत ही अपूर्ण होते हैं, इसमें मनुष्य समाज के अनुरूप सारी योग्यताएँ आरंभ में नहीं होतीं। यह बालक दिन में भी सो जाते हैं, रात को जागते भी रहते हैं, कपड़ों पर मल-मूत्र भी कर देते हैं, भूख लगने जैसी साधारण आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसे रोते-चिल्लाते हैं कि घर गूँज उठता है। इससे उत्साह अवश्य बना रहता है। जिस माता का प्रजनन निरंतर तीव्र गति से जारी रहता है, उसका घर इन उत्पातों से भी भरा ही रहेगा, परंतु क्या कोई पिता, माता, भाई, बहन इन नवजात शिशुओं के उत्पातों से घबराकर घर छोड़ देता है। सच तो यह है कि वह उत्पात भी उदार हृदय वालों के लिए एक अच्छा-खासा मनोरंजन और दिन काटने का सहारा होता है।

हर उन्नत आत्मा का कर्त्तव्य है कि वह आत्मविकास के लिए दूसरों की उन्नति का भी प्रयत्न करे। गिरे हुओं को उठने और बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे। समाज में तमोगुण उबलते रहेंगे, उनसे डरने या घबराने की जरूरत नहीं है, आत्मोन्नति चाहने वाली आत्मा का कर्त्तव्य है कि उन उत्पातों में सुधार करते हुए अपनी भुजाएँ मजबूत बनाएँ। दुष्टता को बढ़ने न देना, पाशविक तत्त्वों को मनुष्य तत्त्व में न घुलने देने का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। चतुर हलवाई दूध को मक्खियों से बचाता रहता है, ताकि दूध अशुद्ध न हो जाए। कर्म-कौशल यह कहता है कि समाज में पाप-वृत्तियों को बढ़ने से रोकना चाहिए। इस विरोध-कर्म में बड़ी होशियारी की जरूरत है। यही तलवार की धार है, इस पर चलना सचमुच योग कहा जाएगा।

बुराइयों से भरे हुए इस विश्व में आपका कार्य क्या होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर भगवान सूर्यनारायण हमें देते हैं। वे प्रकाश फैलाते हैं, अंधेरा अपने आप भाग जाता है, बादल मेह बरसाते हैं, ग्रीष्म का ताप अपने आप ठंडा हो जाता है, हम भोजन खाते हैं, भूख अपने आप बुझ जाती है, स्वास्थ्य के नियमों की साधना करते हैं, दुर्बलता अपने आप दूर

हो जाती है, ज्ञान प्राप्त करते हैं, अज्ञान अपने आप दूर हो जाता है। सीधा रास्ता यह है कि संसार में से बुराइयों को हटाने के लिए अच्छाइयों का प्रसार करना चाहिए। अधर्म को मिटाने के लिए धर्म का प्रचार करना चाहिए। रोग निवारण का सच्चा उपाय यह है कि जनता की बुद्धि में स्वास्थ्य के नियम की महत्ता डाली जाए। बीमार होने पर दवा देना ठीक है, पर समाज को निरोग करने में बेचारे अस्पताल असमर्थ हैं। दंड नीति का भी एक स्थान है, पर वह अस्पताल की जरूरत पूरी करती है। तात्कालिक आवश्यकता का उपचार करती है, मूल कारणों का निवारण दंड नीति द्वारा नहीं हो सकता। विरोध, ऑपरेशन के समान एक तात्कालिक कार्य है। एकमात्र ऑपरेशन करना ही जिस डॉक्टर का काम हो, वह कसाई कहलाएगा। उस डॉक्टर की महिमा है, जो घाव को भर देता है। ऐसा डॉक्टर किस काम का जो पीव निकालने के लिए फोड़ा तो चीरे पर ऐसी बुरी तरह चीरे की घाव बहुत बढ़ जाए और चिकित्सा की मूर्खता में ऑपरेशन का घाव बढ़ते-बढ़ते गहरा पहुँच कर हड्डी को सड़ा दे और रोगी के लिए प्राणघातक बन जाए।

आप सरल मार्ग को अपनाइए, लड़ने, बड़बड़ाने और कुढ़ने की नीति छोड़कर दान, सुधार, स्नेह के मार्ग का अवलंबन लीजिए। एक आचार्य का कहना है कि "प्रेम भरी बात, कठोर लात से बढ़कर है।" हर एक मनुष्य अपने अंदर कम या अधिक अंशों में सात्विकता को धारण किए रहता है। आप अपनी सात्विकता को स्पर्श करिए और उसकी सुप्तता में जागरण उत्पन्न कीजिए। जिस व्यक्ति में जितने सात्विक अंश हैं, उन्हें समझिए और उसी के अनुसार उन्हें बढ़ाने का प्रयत्न कीजिए। अंधेरे से मत लड़िए वरन प्रकाश फैलाइए, अधर्म बढ़ता हुआ दीखता हो तो निराश मत हूजिए वरन धर्म प्रचार का प्रयत्न कीजिए। बुराई को मिटाने का यही एक तरीका है कि अच्छाई को बढ़ाया जाए। आप चाहते हैं कि इस बोतल से हवा निकल जाए, तो उसमें पानी भर दीजिए। बोतल में से हवा निकालना चाहें पर उसके स्थान पर कुछ भरें नहीं तो आपका प्रयत्न बेकार जाएगा। एक बार हवा को निकाल देंगे, दूसरी बार फिर भर जाएगी। गाड़ी जिस स्थान पर खड़ी हुई है, वहाँ खड़ी रहना पसंद नहीं करते, तो उसे खींच कर आगे बढ़ा दीजिए,

आपकी इच्छा पूरी हो जाएगी। आप गाड़ी को तो हटाना चाहें, पर उसे आगे बढ़ाना पसंद न करें, इतना मात्र संतोष कर लें कि कुछ क्षण के लिए पहियों को ऊपर उठाए रहेंगे, उतनी देर तो स्थान खाली रहेगा, पर जैसे ही उसे छोड़ेंगे, वैसे ही वह जगह फिर घिर जाएगी। संसार में जो दोष आपको दिखाई पड़ते हैं, उनको मिटाना चाहते हैं, तो उनके विरोधी गुणों को फैला दीजिए। आप गंदगी बटोरने का काम क्यों पसंद करें? उसे दूसरों के लिए छोड़िए। आप तो इत्र छिड़कने के काम को ग्रहण कीजिए। समाज में मरे हुए पशुओं के चमड़े उधेड़ने की भी जरूरत है, पर आप तो प्रोफेसर बनना पसंद कीजिए। ऐसी चिंता न कीजिए कि मैं चमड़ा न उधेड़ूँगा तो कौन उधेड़ेगा? विश्वास रखिए, प्रकृति के साम्राज्य में उस तरह के भी अनेक प्राणी मौजूद हैं। अपराधियों को दंड देने वाले स्वभावतः आवश्यकता से अधिक हैं। बालक किसी को छेड़ेगा तो उसके गाल पर चपत रखने वाले साथी मौजूद हैं, पर ऐसे साथी कहाँ मिलेंगे, जो उसे मुफ्त दूध पिलाएँ और कपड़े पहनाएँ। आप चपत रखने का काम दूसरों को करने दीजिए। लात का जबाव घूँसों से देने में प्रकृति बड़ी चतुर है। आप तो उस माता का पवित्र आसन ग्रहण कीजिए, जो बालक को अपनी छाती का रस निकाल कर पिलाती है और खुद ठंड में सिकुड़ कर बच्चे को शीत से बचाती है। आप को जो उच्च दार्शनिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसे विद्वान, प्रोफेसर की भाँति पाठशाला के छोटे-छोटे छात्रों में बाँट दीजिए।

हो सकता है कि लोग आपको दुःख दें, आपका तिरस्कार करें, आपके महत्त्व को न समझें, आपको मूर्ख गिनें और विरोधी बनकर मार्ग में अकारण कठिनाइयाँ उपस्थित करें, पर इसकी तनिक भी चिंता मत कीजिए और जरा भी विचलित मत हूजिए, क्योंकि इनकी संख्या बिलकुल नगण्य होगी। सौ आदमी आपके सत्प्रयत्न का लाभ उठाएँगे, तो दो-चार विरोधी भी होंगे। यह विरोध आपके लिए ईश्वरीय प्रसाद की तरह होगा, ताकि आत्मनिरीक्षण का, भूल सुधार का अवसर मिले और संघर्ष से जो शक्ति आती है, उसे प्राप्त करते हुए तेजी से आगे बढ़ते रहें।

आप समझ गए होंगे कि संसार असार है, इसलिए वैराग्य के योग्य है, पर आत्मोन्नति के लिए कर्त्तव्य धर्म पालन करने में यह वैराग्य बाधक

नहीं होता। सच तो यह है कि वैराग्य को अपनाकर ही हम विकास के पथ पर तीव्र गति से बढ़ सकते हैं। संसार को दु:खमय मानना एक भारी भूल है। यह सुखमय है। यदि संसार में सुख न होता, तो स्वतंत्र, शुद्ध, बुद्ध और आनंदी आत्मा इसमें आने के लिए कदापि तैयार नहीं होती। दु:ख और कुछ नहीं, सुख के अभाव का नाम दु:ख है। राजमार्ग पर चलना छोड़कर कँटीली झाड़ियों में भटकना दु:ख है। दु:ख, विरोध, वैर, क्लेश, कलह का अधिकांश भाग काल्पनिक होता है, दूसरे लोग सचमुच उतने बुरे नहीं होते, जितने कि हम समझते हैं। यदि अपने मस्तिष्क को शुद्ध कर डालें, आँख पर का रंगीन चश्मा उतार फेकें, तो संसार का सच्चा स्वरूप दिखाई देने लगेगा। यह दर्पण के समान है, भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा। जैसे ही हमारी दृष्टि भलाई देखने और स्नेहपूर्ण सुधार करने की हो जाती है, वैसे ही सारा संसार अपना प्रेम हमारे ऊपर उड़ेल देता है। अंतरिक्ष लोक से मुक्त आत्माओं का अविरल प्रेम रस फुहारों की तरह झरने लगता है। जैसे ठंडा चश्मा लगा लेने पर जेठ की जलती दोपहरी शीतल हो जाती है, वैसे ही सुख की भावना करते ही विश्व का एक-एक कण अपनी सुख-शांति का भाव हमारे ऊपर छोड़ता चला जाता है। गुबरीले कीड़े के लिए विष्टा के और हंस के लिए मोतियों के खजाने इस संसार में भली प्रकार भरे हुए हैं। आपके लिए वही वस्तुएँ तैयार हैं, जिन्हें चाहते हैं। संसार को दु:खमय, पापी, अन्यायी मानते हैं, तो 'मनसा भूत' की तरह उसी रूप में सामने आता है। जब सुखमय मान लेते हैं, तो मस्त फकीर की तरह रूखी रोटी खाकर बादशाही आनंद लूटते हैं। सचमुच दु:ख और पाप का कुछ अंश दुनिया में है, पर वह दु:ख सहन करने योग्य है, सुख की महत्ता खोजने वाला है, जो पाप है, वह आत्मोन्नति की प्रधान साधना है। यदि परीक्षा की व्यवस्था न हो, तो विद्वान और मूर्ख में कुछ अंतर ही न रहे।

पाठकों को उपरोक्त पंक्तियों से यह जानने में सहायता हुई होगी कि सृष्टि जड़ होने के कारण हमारे लिए दु:ख-सुख का कारण नहीं कही जा सकती। यह दर्पण के समान है, जिससे हर व्यक्ति अपना कुरूप या सुंदर मुख जैसे का तैसा देख सकता है। 'संसार कल्पित है' दर्शनशास्त्र की इस

उक्ति के अंतर्गत यही मर्म छिपा हुआ है कि हर व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार संसार को समझता है। कई अंधों ने एक हाथी को छुआ। जिसने पूँछ छुई थी, हाथी को साँप जैसा बताने लगा। जिसने पैर पकड़ा उसे खंभे जैसा ढाँचा जचा, जिसने पेट पकड़ा उसे पर्वत के समान प्रतीत हुआ। संसार भी ऐसा ही है, इसका रूप अपने निकटवर्ती स्थान को देखकर निर्धारित किया जाता है। आप अपने आस-पास पवित्रता, प्रेम, भ्रातृभाव, उदारता, स्नेह, दया, गुण, दर्शन का वातावरण तैयार कर लें। अपनी दृष्टि को गुणग्राही बना लें, तो हम शपथपूर्वक कह सकते हैं कि आपको यही संसार नंदन वन की तरह, स्वर्ग के उच्च सोपान की तरह आनंददायक बन जाएगा। भले ही पड़ोसी लोग अपनी बुरी और दुःखमयी कल्पना के अनुसार इसे बुरा और कष्टप्रद समझते हैं।

दुःख का कारण पाप ही नहीं है

आमतौर से दुःख को नापसंद किया जाता है। लोग समझते हैं कि पाप के फलस्वरूप अथवा ईश्वरीय कोप के कारण दुःख आते हैं, परंतु यह बात पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। दुःखों का एक कारण पाप भी है यह तो ठीक है, परंतु यह ठीक नहीं कि समस्त दुःख-पापों के कारण ही आते हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि ईश्वर की कृपा के कारण, पूर्व संचित पुण्यों के कारण और पुण्य संचय की तपश्चर्या के कारण भी दुःख आते हैं। भगवान को किसी प्राणी पर दया करके उसे अपनी शरण में लेना होता है, कल्याण के पथ की ओर ले जाना होता है, तो उसे भव-बंधन से, कुप्रवृत्तियों से छुड़ाने के लिए ऐसे दुःखदायक अवसर उत्पन्न करते हैं, जिनकी ठोकर खाकर मनुष्य अपनी भूल समझ जाए, निद्रा को छोड़कर सावधान हो जाए।

सांसारिक मोह, ममता और विषय-वासना का चस्का ऐसा लुभावना होता है कि उन्हें साधारण इच्छा होने से छोड़ा नहीं जा सकता। एक हलका-सा विचार आता है कि जीवन जैसी अमूल्य वस्तु का उपयोग किसी श्रेष्ठ काम में करना चाहिए, परंतु दूसरे ही क्षण ऐसी लुभावनी परिस्थितियाँ सामने आ जाती हैं, जिनके कारण वह हलका विचार उड़ जाता है और मनुष्य जहाँ का तहाँ उसी तुच्छ परिस्थिति में पड़ा रहता है।

इस प्रकार की कीचड़ में से निकालने के लिए भगवान अपने भक्त में झटका मारते हैं, सोते हुए को जगाने के लिए बड़े जोर से झकझोरते हैं। यह झटका और झकझोरना हमें दुःख जैसा प्रतीत होता है।

मृत्यु के समीप तक ले जाने वाली बीमारी, परमप्रिय स्वजनों की मृत्यु, असाधारण घाटा, दुर्घटना, विश्वसनीय मित्रों द्वारा अपमान या विश्वासघात जैसी दिल को चोट पहुँचाने वाली घटनाएँ इसलिए भी आती हैं, कि उनके जबरदस्त झटके के आघात से मनुष्य तिलमिला जाए और सहज होकर अपनी भूल सुधार ले। गलत रास्ते को छोड़कर सही मार्ग पर आ जाए।

पूर्व संचित शुभ संस्कारों के कारण इसलिए दुःख आते हैं कि शुभ संस्कार एक सच्चे चौकीदार की भाँति उस मनुष्य को उत्तम मार्ग पर ले जाना चाहते हैं, परंतु पाप की ओर उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है, तो वे शुभ संस्कार इसे अपने ऊपर आक्रमण समझते हैं और इससे बचाव करने का पूरा प्रयत्न करते हैं। कोई आदमी पाप कर्म करने जाता है, परंतु रास्ते में ऐसा विघ्न उपस्थित हो जाता है कि उसके कारण उस कार्य में सफलता नहीं मिलती। वह पाप होते-होते बच जाता है। चोरी करने के लिए यदि रास्ते में पैर टूट जाए और दुष्कर्म पूरा न हो सके, तो समझना चाहिए कि पूर्व संचित शुभ संस्कारों के कारण, पुण्य फल के कारण ऐसा हुआ है।

धर्म कर्म करने में, कर्त्तव्य धर्म का पालन करने में असाधारण कष्ट सहना पड़ता है। अभावों का सामना करना होता है। इसके अतिरिक्त दुष्टात्मा लोग अपने पापपूर्ण स्वार्थों पर आघात होता देखकर उस धर्म सेवा के विरुद्ध हो जाते हैं और नाना प्रकार की यातनाएँ देते हैं, इस प्रकार के कष्ट सत्पुरुषों को पग-पग पर झेलने पड़ते हैं। यह पुण्य संचय के, तपश्चर्या के अपनी सत्यता की परीक्षा देकर स्वर्ण समान चमकाने वाले दुःख हैं।

निस्संदेह कुछ दुःख पापों के परिणामस्वरूप भी होते हैं, परंतु यह भी निश्चित है कि भगवान की कृपा से, पूर्व संचित शुभ संस्कारों से और धर्म सेवा की तपश्चर्या से भी वे आते हैं। इसी प्रकार जब अपने ऊपर कोई विपत्ति आए, तो केवल यह ही न सोचना चाहिए कि हम पापी हैं, अभागे हैं, ईश्वर के कोपभाजन हैं, संभव है वह कष्ट हमारे लिए किसी हित के

लिए ही आया हो, उस कष्ट की तह में शायद कोई ऐसा लाभ छिपा हो, जिसे हमारा अल्पज्ञ मस्तिष्क आज ठीक-ठीक रूप से न पहचान सके।

दूसरे लोग अनीति और अत्याचार करके किसी निर्दोष व्यक्ति को सता सकते हैं। शोषण, उत्पीड़न और अन्याय का शिकार कोई व्यक्ति दुःख पा सकता है। अत्याचारी को भविष्य में उसका दंड मिलेगा, पर इस समय तो निर्दोष को ही कष्ट सहना पड़ा। ऐसी घटनाओं को उस दुःख पाने वाले व्यक्ति के कर्मों का फल नहीं कहा जा सकता।

विद्या पढ़ने में विद्यार्थी को काफी कष्ट उठाना पड़ता है, माता को बालक के पालने में कम तकलीफ नहीं होती, तपस्वी और साधु पुरुष लोक-कल्याण और आत्मोन्नति के लिए नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं, इस प्रकार स्वेच्छा से स्वीकार किए हुए कष्ट और उत्तरदायित्व को पूरा करने में जो कठिनाई उठानी पड़ती है एवं संघर्ष करना पड़ता है, उसे दुष्कर्मों का फल नहीं कहा जा सकता।

हर मौज मारने वाले को पूर्व जन्म का धर्मात्मा और हर कठिनाई में पड़े हुए व्यक्ति को पूर्व जन्म का पापी कह देना उचित नहीं। ऐसी मान्यता अनुचित एवं भ्रमपूर्ण है। इस भ्रम के आधार पर कोई व्यक्ति अपने को बुरा समझे, आत्मग्लानि करे, अपने को नीच या निंदित समझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। कर्म की गति गहन है, उसे हम ठीक प्रकार नहीं जानते केवल परमात्मा ही जानता है।

हमें अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए हर घड़ी प्रयत्नशील एवं जागरूक रहना चाहिए। दुःख-सुख जो आते हों, उन्हें धैर्यपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। मनुष्य की जिम्मेदारी अपने कर्त्तव्य धर्म का पालन करने की है। सफलता-असफलता या दुःख-सुख अनेक कारणों से होते हैं, उसे ठीक प्रकार कोई नहीं जानता।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।